॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-02-23
प्रकाशन दिनांक = 05-02-23

फरवरी २०२३

वर्ष ५२ : अङ्क ४
दयानन्दाब्द : १९८
विक्रम-संवत् : माघ-फाल्गुन २०७९
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२३

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- पादरियों ने ऐसे भगाया कोरोना ४
- प्रश्नोपनिषद् में वाच्यादि अर्थों के उदाहरण ६
- ब्रह्मचर्य बल दिखा ९
- ऑनलाइन है भगवान फिर भक्त..... १०
- महायोगी के प्रेरक प्रसंग (२) १२
- जन्म-पुनर्जन्म होना सत्य सिद्धान्त है १४
- प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की १७
- मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन १८
- उपासना १९
- हरयाणे का सांस्कृतिक जीवन २३
- हमारा अभिवादन नमस्ते ही है २४
- शराब और जुआ २५
- गाय व भैंस के दूध में अन्तर २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अत: किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ४००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ६००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥

—ऋ० ७।९०।४

शब्दार्थ—उच्छन्नुषसः = प्रकाश का विस्तार करने वाले **सुदिनाः** = उत्तम दिनों वाले **अरिप्राः** = निर्दोष **दीध्यानाः** = निरन्तर ध्यान करने वाले मनुष्य **उरु** = विशाल **ज्योतिः** = प्रकाश को **विविदुः** = प्राप्त करते हैं। **उशिजः** = कमनीय कामनाओं वाले **गव्यम्** = इन्द्रिय-सम्बन्धी **ऊर्वम्** = विशाल बल को **चित्** = भी **वि+वव्रुः** = विशेष रूप से वरण करते हैं **तेषाम्** = उनके **प्रदिवः+अनु** = ज्ञान प्रकाश के अनुकूल **आपः** = जल **सस्रुः** = बहने लगते हैं।

व्याख्या—सब विषयों का आकर[१] होते हुए भी वेद मुख्यतया ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करता है। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा है—

सर्वेषां वेदानां मुख्यं तात्पर्यं ब्रह्मण्येवास्ति । क्वचित्साक्षात्क्वचिच्च परम्परया, न कस्मिंश्चिदपि मन्त्रे ईश्वरार्थत्यागो अस्ति ।

अर्थात् सभी वेदों का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म में ही है, कहीं साक्षात्, कहीं परमपरा से, किसी भी मन्त्र में ईश्वर-अर्थ का त्याग नहीं है।

भाव यह है कि कोई मन्त्र यदि ऐसा प्रतीत हो जिसमें परमात्मा से अतिरिक्त का वर्णन हो, वहाँ भी परमात्मा का अधिष्ठाता-रूप से या स्रष्टा आदि के रूप में वर्णन समझना चाहिए। वैसे वेद ब्रह्मविद्या का ही मुख्य-रूप से वर्णन करता है। जीव, प्रकृति, ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान कराके प्रकृतिपाश से छुड़ाकर ब्रह्मसाक्षात् कराना ब्रह्मविद्या का काम है। ज्ञान का प्रधान साधन ध्यान है, उस ध्यान का बयान इस मन्त्र में है—

उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः=निरन्तर ध्यान करने वाले प्रकाश को प्राप्त करते हैं। **ध्यान** का एक सामान्य अर्थ है विचार करना। प्रत्येक पदार्थ के गुण-दोषों का विवेचन **विचार** है। अमुक पदार्थ **उपादेय**=ग्रहण करने योग्य और अमुक **हेय**=त्यागने योग्य है, इस प्रकार के विवेक को **विचार** कहते हैं। इस प्रकार से हेय—उपादेय का विवेक करके हेय को त्यागकर उपादेय को ग्रहण करके आत्मसात् करने का नाम ध्यान है, अर्थात् ऐसी अवस्था जिसमें ध्येय वस्तु पर चिरकाल तक अटूट विचारधारा निर्बाधरूप से बनी रहे, उसको ध्यान कहते हैं। इस ध्यान का फल विशाल प्रकाश बतलाया है। अनुभवी जन इसका समर्थन करते हैं। ध्यानियों की थोड़ी-सी पहचान बताई है—वे **सुदिन** होते हैं। उनकी दिनचर्या बड़ी सधी हुई, नियमित होती है। वे **अरिप्र** होते हैं। साधारणतया

१. खान ।

दस प्रकार के पाप होते हैं। जैसा कि वात्स्यायन मुनि जी ने न्यायभाष्य में लिखा है–

शरीरेण प्रवर्त्तमानः हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचाऽनृतपरुषसूचना-संबद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति, सेयं प्रवृत्तिराधर्माय ।

–न्यायभाष्य १।१।२

शरीर से प्रवृत्त होता हुआ मनुष्य हिंसा, चोरी और निषिद्ध मैथुन करता है। वाणी से मिथ्या, कठोर वचन चुगली और असम्बद्ध प्रलाप करता है, मन से दूसरों से द्रोह, दूसरों के धन-हरण करने की इच्छा और नास्तिकता। यह प्रवृत्ति अधर्म का, पाप का हेतु होती है।

ध्यानीजन इन पापों से रहित होते हैं। इस बात को अगले मन्त्र के पूर्वार्द्ध में बहुत स्पष्ट करके कहा है–

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति । –ऋ० ७।९०।५

वे सच्चे मन से ध्यान करते हुए,अपने सच्चे ज्ञानकर्म से युक्त हुए निर्वाह करते हैं, अर्थात् उनके ज्ञान, कर्म तथा मन में कोई खोट नहीं होता।

ध्यान का साधन भी बतला दिया कि वह मन से किया जाता है। उनके शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक व्यवहार में किसी प्रकार का असत्य नहीं होता, अतः उनके निष्पाप होने में सन्देह किसे हो सकता है?

'स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति' में एक और संकेत भी है कि उनका कर्म, अर्थात् आहार-व्यवहार युक्तियुक्त होता है। ध्यानी कर्महीन नहीं होते वरन् वे **'स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति'**=अपने कर्म से युक्त हुए निर्वाह करते हैं। उन्हें ज्ञात है कि **'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'** कोई भी एक क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता। अतः वे अपने कर्तव्य कर्म से सदा युक्त रहते हैं। ध्यानियों के अरिप्र होने का हेतु भी इस मन्त्र में बता दिया गया है, अतः **'उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः**= ध्यान करते हुए वे विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं । रिप्र=दोष=पाप अन्धकार में होता है। प्रकाश में अन्धे या असावधान को ठोकर लग सकती है, नेत्रवाले तथा सावधान को ठोकर लगना सम्भव नहीं। ध्यानियों का ध्यानानुष्ठान उनकी सावधानता की सूचना देता है, अतः प्रकाश प्राप्त कर वे पाप से निरवकाश हो जाते हैं। परिच्छिन्न जीव का स्वभाव है गति करना, इस नैसर्गिक नियम को जानकर वे ध्यानी भी गति करने में विवश हैं, अतः वे ध्यान से प्राप्त ज्योति के प्रसार के लिए यत्न करते हैं। ज्ञान-ज्योति प्रसार करने से उनका ज्ञानालोक उत्तरोत्तर बढ़ता है और इस प्रकार उनके रिप्रों का संहार होता है। योग के द्वारा वे अपनी इन्द्रियशक्ति बढ़ा लेते हैं। उनके तप के प्रभाव से अध्यात्म जल की शान्त धाराएं बहने लगती हैं और वे उनके रहे-सहे दोषों को भी बहा ले जाती हैं। ऋग्वेद (१०।९।८) में इस अध्यात्मजल की महिमा ऐसी ही कही है–

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥

हे जलो ! यह बहा ले जाओ, जो कुछ मुझमें दुरित=दुरवस्था=दुर्गति=बुराई है, अथवा जो मैंने किसी से द्रोह किया है, या गाली दी है, अथवा झूठ बोला है ।

नदी-नालेवाले जल में यह बल कहाँ ? वह तो **'अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति'** शरीर की शुद्धि कर सकता है। आओ, इस जल में जी भरकर नहाओ । ❑❑

पादरियों ने ऐसे भगाया कोरोना

–धर्मपाल आर्य

पिछले दिनों तेलंगाना के हेल्थ डायरेक्टर जी श्रीनिवास राव ने कहा था कि भारत के लोग जीसस के चलते ही कोरोना महामारी के प्रकोप से बच पाए हैं। जी श्रीनिवास के अनुसार ईसामसीह ने ही भारत में कोरोना वायरस को नियंत्रित किया है, वरना भारत तो तबाह हो जाता। यानि जीसस ने यूरोप अमेरिका और वेटिकन सिटी छोड़कर जहाँ उनके सबसे अधिक मानने वाले हैं का सारा ध्यान अपने अनुयायियों को छोड़कर भारत को बचा रहा था, जो चार किलो चावल में ईसाई बन जाते हैं। हालाँकि इनके बयान के बाद लोगों को गुस्सा आया और पूछा कि वह हेल्थ डायरेक्टर क्यों हैं? इसे इस्तीफा देकर जाना चाहिए और जीसस को रक्षा करने दें।

हालाँकि जीसस की बीमारी से पीड़ित तेलंगाना के स्वास्थ निदेशक से कुछ सवाल जरुर हैं, जिन्हें सुनकर वो या तो उत्तर दे या फिर अपने पद से इस्तीफा। और जाकर चर्च की सीढियों पर पोंछा लगाये।

दरअसल कोविड १९ कोरोना आया था साल २०२० में एक अंग्रेजी वेबसाईट है वेटिकन न्यूज इसी वेटिकन न्यूज की १७ मई २०२१ की एक रिपोर्ट थी कोरोना को लेकर, ये वेबसाइट लिखा था कि कोरोना के चलते भारतीय चर्च ने १६० पादरियों को खो दिया। ये आंकड़े १० अप्रैल से १७ मई २०२१ के बीच के है। रिपोर्ट अपनी चिंता जाहिर करते हुए लिखती है कि ये आंकड़े बहुत खतरनाक हैं, क्योंकि हमारे पास केवल ३०,००० कैथोलिक पुजारी हैं और यदि चार दैनिक मर जाते हैं, तो यह हम सभी के लिए बहुत चिंता का विषय है। इनमें केवल पादरी ही नहीं कुछ बड़े विशप भी थे। जैसे पांडिचेरी-कुडालोर आर्कबिशप एंटनी आनंदरायर, झाबुआ के बिशप बेसिल भूरिया, सीरो-मालाबार संस्कार के बिशप जोसेफ पादरी नीलांकविल भी शामिल थे। रिपोर्ट में ये भी बताया गया था कि ज्यादातर वो पादरी और नन मरे है जो गाँवो में जाकर धर्मांतरण का कार्य कर रहे थे। इसके अलावा केरल के मुन्नार में उसी दौरान एक वार्षिक कार्यक्रम में शामिल होने वाले चर्च ऑपफ साउथ इंडिया के १०० से ज्यादा पादरी कोरोना पॉजिटिव पाए गए थे और दो पादरियों की मौत भी हो गई थी।

अब ऐसे में सवाल ये है जीसस बचा किसे रहा था ! उसके पादरी तड़फ-तड़फकर मर रहे थे, उसी दौरान पोप भी हॉस्पिटल में कोरोना के चलते एडमिट हो गया था। इसके अलावा पश्चिम अफीकी राष्ट्र सिएरा लियोन में एक यूनाइटेड मेथोडिस्ट चर्च के बिशप की मौत हुई। ब्रुकलिन में एक ४९ वर्षीय पादरी कोरोनोवायरस गया न्यू सेंट पॉल टैबरनेकल चर्च ऑपफ गॉड के वरिष्ठ पादरी बिशप फिलिप ए ब्रुक्स की कोविड से मौत हुई। सबसे बड़ा धोखा तो जीसस ने अपने घर रोम या इटली में किया। यहाँ तो करीब १०० पादरियों और सैंकड़ों ननों की मौत हुई।

दरअसल भारत में ईसाइयत का व्यापार सबसे बेहतरीन चल रहा है। जिस ईसाइयत को यूरोप और अमेरिका साइड कर रहा है, आज उसे भारत में बेचा जा रहा है। बिल्कुल ऐसे जैसे पुरानी गाड़ी या कपड़े हों ! इसके लिए चंगाई सभा लगाई जाती है। पिछले दिनों जब पोप की एक तस्वीर वायरल

हुई उन्हें व्हीलचेयर से ले जाया जा रहा था। तब झारखंड के अनेक शहरों में बैनर लगे थे जिनमें लिखा था प्रभु यीशु के नाम पर अंधे देखते हैं, बहरे सुनते हैं, गूंगे बोलते हैं और मुर्दे भी जी उठते हैं। ये बैनर दुमका में हो रही चंगाई सभा के लिए लगाए गए थे। इसमें लोगों को बुलाने के लिए ही इस तरह के बैनर लगाए गए थे इन बैनरों को देखकर लोग कह रहे थे कि यदि चंगाई सभा में भाग लेने मात्र से किसी की बीमारी ठीक हो सकती है, तो इसकी सबसे अधिक जरूरत तो खुद पोप को है। क्योंकि पोप घुटनों के दर्द से परेशान है और यही वजह है कि वे व्हीलचेयर की मदद से चल फिर रहे हैं।

असल अतीत देखा जाये तो इस खेल की शुरुआत सन १९९७ में छत्तीसगढ़ के रायपुर से शुरू हुई थी। वहाँ ऐसी ही एक चंगाई सभा के बोर्ड शहर व ग्रामीण अंचल में लगने लगे थे। रिक्शा ऑटो जीप कारों से धुंआधार प्रचार होने लगा था कि शहर के गास मेमोरियल मैदान में १२ से १६ नवम्बर तक विशेष धार्मिक सभा होगी। जिसमें नेत्रहीन को दिखाई देने लगेगा, शरीर से विकलांग चलने लगेंगे, असाध्य रोगी कुलांचे भरते हुए जायेंगे। हर एक रोग को ठीक करने का यहाँ दावा किया गया था। अब जो लोग यहाँ से निराश लौटे बाद में उन्हें कहा गया कि उन्हें पहले यीशु पर विश्वास करना होगा। वहीं दूसरी ओर कथित मरीजों को मंच पर लाकर यह कहलवाया गया कि वे अपंग थे। अभी प्रार्थना के चमत्कार से ठीक हो गए हैं। यह सब अखबारों में छपा था, जबकि उसी दौरान जबलपुर में ऐसी ही एक सभा में चमत्कार से स्वस्थ होने की उम्मीद से पहुँचे कुछ मरीजों की ठण्ड लगकर मृत्यु होने की खबर भी अखबारों में प्रकाशित हुई थी।

सब जानते हैं हर किसी के जीवन में दु:ख है, ऐसा कोई नहीं जो बीमार न होता हो, भारत जैसे देश की जनता आज भी चमत्कारों पर विश्वास करती है। देश में अभी अस्पतालों की बड़ी कमी है, ग्रामीण आंचलों में एक तो अनेकों जगह दूर-दूर तक अस्पताल नहीं, इस कारण भी अनेकों लोग चंगाई जैसी सभाओं में यह सोचकर चले जाते हैं कि क्या पता कोई जादू हो जाये। इसी जादू की लालसा में पिछले दिनों जिला रायडीह प्रखंड के तुलमुंगा गांव में एक गरीब और बीमार गर्भवती महिला पूनम को मिशनरियों के चंगाई सभा में ठीक करवाने के लिए ले जाया गया था। चंगाई सभा में चंगा होने की जगह महिला की हालत खराब हुई और उसकी मौत हो गयी थी। लेकिन मिशनरियों का नंगा खेल ये सर्कस देश के कई राज्यों में जारी है। विडम्बना इस बात की है। कई पास्टरों, पादरियों की हाल की गिरफ्तारियों के बाद भी चंगाई सभा बेरोकटोक जारी है। जबकि लोगों और सरकारों को इससे उसी तरह से लड़ना चाहिए जैसे किसी संगठित अपराध के खिलाफ लड़ते हैं। क्योंकि चंगाई सभा भी गरीब लोगों को बेवकूफ बनाने और उनका धर्मांतरण करने का एक सफल और विशाल बाजार बन चुका है।

बाइबल में बताया जाता है कि जो जीसस पर विश्वास करता है वो मरता नहीं, दूसरा जो जीसस पर विश्वास करता है वो पानी पर चलने लगता है। अब जीसस तो इस दुनिया में नहीं है क्यों? शायद खुद पर विश्वास नहीं करते होंगे ! अगर करते तो आज जिन्दा होते अकार्डिग टू बाइबल। इसके अलावा अब रही बहते पानी पर चलने की बात, तो क्या कारण है आज तक वेटिकन में करीब २६३ पोप और दुनिया में करोड़ों बिशप पादरी और नन हुए लेकिन एक भी पानी पर नहीं चला? बहता हुआ पानी भी छोड़ दीजिये एक तसला पानी का भरकर उसमें ही खड़ा होकर दिखा देते तो लोग मान लेते कि हाँ इनका जीसस

(शेष पृष्ठ २७ पर)

प्रश्नोपनिषद् में वाच्यादि अर्थों के उदाहरण

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

संस्कृत वाङ्मय में यह सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है कि कोई भी वाक्य अपने पूरे अर्थ नहीं जना सकता–उसको समझने के लिए प्रसंग को जानना अत्यावश्यक है। प्रसंग में रखते हुए भी वाक्य को समझना कठिन हो सकता है। वेदों के सन्दर्भ में एक पूरा दर्शनशास्त्र, पूर्वमीमाँसा, इस विषय को विश्लेषित करता है, क्योंकि वेदों के सन्दर्भ में यह समस्या और भी प्रगाढ़ हो जाती है। इस अर्थीकरण की प्रक्रिया में प्रथम सोपान है वाक्यों के तीन प्रकार क अर्थों को समझना। यह लेख प्रश्नोपनिषद् के वाक्यों के माध्यम से इन तीन प्रकार के अर्थों पर प्रकाश डालता है।

किसी भी भाषा का कोई भी वाक्य अपूर्ण होता है, चाहे वह कितना भी सरल क्यों न हो। उदाहरण के लिए लीजिए यह वाक्य–"चले जाओ"। प्रथमदृष्ट्या यहाँ अर्थ समझने में कोई भी कठिनाई प्रतीत नहीं होती। तो क्या आप इससे इन प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं–यह वाक्य किसने कहा? यह निर्देश किसको दिया गया? दूसरे व्यक्ति को कहाँ से जाने को कहा गया? क्या यह आज्ञा दी गई, या डांटा गया या फिर अनुमति दी गई? और अभी तो हमने कारणों के बारे में पूछा भी नहीं ! इसे स्पष्ट होता है कि बिना प्रसंग के, छोटे से छोटा, सरल से सरल वाक्य भी बहुत कम अर्थ हमें बताने में समर्थ होता है। फिर वे वाक्य आते हैं जो कि सीधा-सीधा कुछ कह ही नहीं रहे होते, जो कि प्रसंग जानने पर भी कुछ अटपटे लगते हैं। इसलिए भाषाविदों ने इस विषय पर बहुत कार्य किया और लोकभाषा, साहित्यभाषा व वेदों की भाषा को समझने के लिए अर्थों का त्रिविध विभागीकरण किया। यथा–

वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः ।
व्यङ्ग्यो व्यञ्जनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः ॥ साहित्यदर्पणम्, परिच्छेदः २।।

विस्तार से, ये विभाग इस प्रकार हैं–

१. **वाच्यार्थ**–जो अर्थ शब्दों को जैसा-का-तैसा समझने से निकलता है, वह अर्थात् शब्दों को सुनकर जो प्रथम समझ में आए, वह अर्थ। सो, यह सभी वाक्यों में समान रूप से पाया जाता है, परन्तु वही अर्थ इष्ट हो, यह आवश्यक नहीं है। वाच्यार्थ का उदाहरण–सूर्य उदित हो रहा है।

२. **लक्ष्यार्थ**–जो वस्तु को सीधा-सीधा न बोलकर, उस वस्तु के लक्षण से उसको कहता है। यथा–"रिक्शा यहाँ आओ !" यहाँ आप 'रिक्शा को नहीं पुकार रहे, अपितु रिक्शा चलाने वाले को सम्बोधित कर रहे हैं? संस्कृत ग्रन्थों में इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण है–**"मञ्चाः क्रोशन्ति"**, अर्थात् मञ्च चिल्ला रहे हैं। यहाँ मञ्च तो चिल्लाने में असमर्थ हैं, यह सर्वविदित है, इसलिए अर्थ जाना जाता है–मञ्चस्थ जन चीख रहे हैं ।

३. **व्यंग्यार्थ**–इस अर्थ में लक्षण भी सीधा-साधा नहीं प्रस्तुत होता और उसका, व पूरे अर्थ का, अनुमान लगाना पड़ता है। सुनने में यह बहुत कठिन लगता है, परन्तु इसका भी हम दैनन्दिन

प्रयोग करते हैं ! यथा–"यह सुन्दरी चन्द्रमुखी है।" वस्तुतः स्त्री के मुख का चन्द्र से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु चन्द्र के सौन्दर्य, उसकी उज्जवलता की तुलना स्त्री के मुख से की गई है। यह हुआ व्यंग्य अर्थ। लौकिक भाषा में आज हम व्यंग्य से केवल ताने या उपहास को समझते हैं, परन्तु इसका मूल अर्थ इससे बड़ा है। जबकि इसका प्रयोग हम भी करते हैं, तथापि साहित्य में इसको समझना यदा-कदा कठिन हो जाता है, विशेषतः जब भाषा हमारी परिचित न हो। यही विडम्बना वैदिक अर्थों में हो जाती है, जहाँ व्यंग्यार्थ को छोड़, हम वाच्यार्थ समझने लगते हैं।

प्रतिज्ञानुसार, अब हम प्रश्नोपनिषद् की ओर अग्रसर होते हैं और वहाँ इन तीनों प्रकारों को देखते हैं ।

(क) वाच्यार्थ– उपनिषद् के प्रथम प्रश्न की तीसरी कण्डिका है–**अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ । भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥** ।।प्रश्नोपनिषद् १।३।।

अर्थात् फिर कबन्धी कात्यायन ने (ऋषि पिप्पलाद के) पास आकर पूछा, "भगवन् ! ये प्रजाएं कहाँ से उत्पन्न होती हैं?" यहाँ कबन्धी कात्यायन का पूछना और उसका प्रश्न यथार्थ हैं–जैसे शब्द हैं। जैसा उनका सीधा अर्थ बनता है, वही कहा जा रहा है। यह है वाच्यार्थ ।

(ख) लक्ष्यार्थ – इसी अध्याय में आगे कहा गया है–**स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ।....** ।।प्रश्नोपनिषद् १।७।।

जिसका वाच्यार्थ है–वह यह (आदित्य) वैश्वानरो, प्राण व अग्नि है जो उदय को प्राप्त होता है। यहाँ भौतिक सूर्य व परमात्मा के अर्थों में श्लेषालंकार है। यदि परमात्मा का अर्थ लें तो, परमात्मा न तो सब नर-रूपी है, न सब रूपों वाला है, न प्राण है और न अग्नि है, अपितु उसके इन विशेषणों या नामों को लक्षण के रूप में समझा जाना चाहिए–परमात्मा, विभू होने के कारण, सब नरों (और अन्य जीवों में भी) विद्यमान है। सब जड़ रूपों में भी वह विद्यमान है । सब प्राणियों में प्राण वही फूंकता है और वही उनको हर लेता है। स्वप्रकाशवान् होने से, और सब ज्ञान को प्रकाशित करने से, वह अग्नि-तुल्य है। इस प्रकार कितने ही विशेषण वास्तव में लक्ष्यार्थ का बोध कराते हैं, वाच्यार्थ से काम नहीं बनता ।

(ग) व्यंग्यार्थ– सबसे कठिन, व सबसे विभिन्न प्रकार का यह अर्थ प्रश्नोपनिषद् में सर्वत्र ओत-प्रोत है, यहाँ तक कि इस उपनिषद् के अर्थ इसीलिए दुरूह हो जाते हैं कि इन अर्थों को सम्यकतया समझा नहीं जाता। इसलिए मैं यहाँ कुछ अधिक उदाहरण दे रही हूँ ।

प्रथम ही प्रश्न में एक अत्यन्त विस्मयकारक वाक्य आता है–**आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा। रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च। तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥** ।।प्रश्नोपनिषद् १।५।।

जिसका वाच्यार्थ है–निश्चय ही, आदित्य ही प्राण है और रयि (धन) चन्द्रमा है । अवश्य ही, रयि यह सब कुछ है जो कि मूर्त है और अमूर्त (अर्थात् जो आकार वाला है या बिना आकार वाला)। इस कारण से आकार ही रयि है। यहाँ पहले तो यह विरोध प्रकट होता है कि रयि को मूर्त व अमूर्त कहकर, उसको अगले ही वाक्य में मूर्त घोषित कर दिया गया। परन्तु यह विरोध ही हमें बताता है कि जो कहा जा रहा है, उसे वैसे नहीं समझना है जैसा उसके शब्द कह रहे हैं, अर्थात् यहाँ वाच्यार्थ इष्ट नहीं है । सही अर्थ को समझने के लिए हमें पिछली कण्डिका को भी देखना

पड़ेगा, जहाँ बताया गया है कि प्रजापति परमेश्वर ने प्रथमतया प्राण और रयि का जोड़ा उत्पन्न किया, जिससे उसने यह माना कि ये दोनों मिलकर मेरे लिए बहुत सारी प्रजा उत्पन्न करेंगे। इस वाक्य में हम शीघ्र ही लक्ष्यार्थ समझ सकते हैं कि 'प्राण से सब प्राणी इंगित किए गए हैं, और 'रयि' से सब जड़ पदार्थ, क्योंकि मनुष्य के 'धन' में भूमि आदि जड़ पदार्थों का विशेष महत्व है । तब कण्डिका का लक्ष्यार्थ बना–ब्राह्माण्ड को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–जड़ व चेतन। दोनों मिलकर बहुत प्रकार के जीव उत्पन्न करते हैं । अब प्रकृत कण्डिका को देखते हैं। आदित्य से यदि सूर्य समझा जाए, तो वह प्राणों का कारण होने से, यह अर्थ ठीक माना जाएगा। परन्तु फिर हमें जड़ प्रकृति को चन्द्रमा मानना पड़ेगा। इस अर्थ में तो कुछ भी श्रेय नहीं है। और वस्तुतः, सूर्य भी रयि का ही भाग होगा । इसलिए दोनों ही शब्दों के यौगिक अर्थ लेने होंगे। आदित्य की व्युत्पत्ति 'दो अवखण्डने' धातु से है, जिससे अर्थ बना 'जिसका खण्डन न किया जा सके, जो अमर्त्य हो'। इससे प्राणों के आधार, उनके निमित्त कारण जीवात्मा का सरलता से ग्रहण हो जाता है। इस प्रकार कार्य-कारण को एक ही वस्तु बताना प्राचीन ग्रन्थों की एक सामान्य शैली हुआ करती थी, जैसे कि ब्राह्मण-ग्रन्थों का वचन "अन्नं वै प्राणः"। यह व्यंग्यार्थ का उदहरण है। चन्द्रमा व रयि में भी वही कार्य-कारण सम्बन्ध है। चन्द्रमा शब्द 'चदि आह्लादने' धातु से निष्पन्न होता है, क्योंकि चांद देखकर सभी आनन्दित हो जाते हैं। इसी प्रकार, संसार की विभिन्न वस्तुओं से, उनके भोगों से जीव भी आनन्दित रहते हैं। इसलिए भौतिक पदार्थों (रयि) को चन्द्रमा कहना सही ही है। सो, जो कण्डिका में रयि को मूर्त व अमूर्त कहा गया है, वह इस प्रकार है–पञ्च महाभूतों में आकाश व वायु मूर्त नहीं है, व अग्नि, जल व पृथिवी मूर्तिमान् हैं। फिर, अगले ही क्षण में केवल मूर्ति को रयि क्यों कहा गया? सो इसलिए कि यहाँ मूर्ति से शरीर का ग्रहण करना है। पिप्पलाद हमें बताना चाह रहे हैं कि प्राणियों का जो मूर्तिमान् भाग है, जो चक्षु इन्द्रिय से ग्रहण होता है, वह भी वास्तव में रयि ही है। मानव को उसे अपना आकार नहीं समझना चाहिए। आत्मा तो आदित्य व अमूर्तिमान् है। यही इस कण्डिका का मुख्य उपदेश है, और यह उसके व्यंग्यार्थ में छिपा हुआ है ।

वस्तुतः, उपमा आदि सभी अलंकार प्रायः व्यंग्य के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि वे अर्थ को परोक्ष ढंग से प्रस्तुत करते हैं, सीधे-सीधे बात को नहीं कहते हैं (यदि सीधे कहते हैं, तो वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ के अन्तर्गत ही आते हैं)। इनमें से कुछ अन्य व्यंग्यार्थों को हम आगे की शरीर में स्थित दिव्य शक्ति विषयक कण्डिका में सुन्दरता से निरूपित पाते हैं–

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्यथाहमेवैतत् पञ्चधात्मानं
प्रविभज्यैतद्वाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवः ॥ ।।प्रश्नोपनिषद् २।३।।

अर्थात् उन देवों ने जब यह झगड़ना प्रारम्भ किया कि मैं ही इस शरीर को धारण किए हुए हूँ (उपनिषद् की पिछली कण्डिका से), तब उनमें से सबसे वरणीय प्राण उनसे बोला, "भ्रम में मत पड़ो ! मैं ही अपने को पांच प्रकार से विभक्त करके, इस शरीर को स्थिर करके, उसका धारण करता हूँ।" परन्तु उन (अन्य देवों) ने प्राण की इस बात पर विश्वास नहीं किया।

यहाँ आलंकारिक भाषा में प्राण व अन्य देवों का संवाद वर्णित है। प्राण तो निर्जीव है, बोल नहीं सकता, सोच भी नहीं सकता; और अन्य देव भी जड़ हैं । सो, यह असम्भव, काल्पनिक अर्थ

न तो वाच्यार्थ है और न ही लक्ष्यार्थ, वह कल्पना से ढका हुआ व्यंग्यार्थ ही है। तथापि काल्पनिक संवाद के अन्तर्गत जो वाक्य हैं, वे वाच्यार्थ को ही कह रहे हैं, क्योंकि वस्तुतः, प्राण पांच में विभक्त होकर शरीर का धारण करता है।

छठे प्रश्न के अन्तर्गत पुरुष की षोडश कलाओं को इस प्रकार वर्णन आता है–

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च॥ ।।प्रश्नोपनिषद् ६।४।।

अर्थात् उस (पुरुष) ने प्राण का सृजन किया; प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथिवी, इन्द्रिय, मन व अन्न का; अन्न से प्रजनन-शक्ति का, तप, मन्त्र, कर्म, लोकों और लोकों में प्राप्त नामों का ।

यह कण्डिका है तो अति-प्रसिद्ध, परन्तु, इसके अर्थ गलत भी किए जाते हैं। विशेष रूप से, मैंने एक आचार्य जी को यह बताते हुए सुना कि, सृष्टि की रचना में, अन्न से ही वीर्य उत्पन्न होता है। पुनः यह वचन वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में भेद न कर पाने के कारण कहा जाता है। वस्तुतः पिप्पलाद यह बता रहे हैं कि प्राणिसृष्टि में पहले उसका अन्न सृजित होता है। यदि प्राणी का अन्न ही न हो, तो वह जीएगा कैसे? सो, पूर्व-प्राप्त तपते भूगोल के ठण्डे हो जाने पर, और वर्षा और औक्सिजन के प्राप्त होने पर, प्रथम स्थावरों की उत्पत्ति होती है, फिर उनको खाने वाले जन्तुओं को खाने वाले पशुओं की। इतनी बड़ी बात बहुत संक्षेप में यहाँ कह दी हुई है, क्योंकि इसका अधिकतर अंश छुपा हुआ है। वाच्यार्थ से यह अर्थ नहीं निकलता, न ही लक्ष्यार्थ से। यहाँ भी व्यंग्यार्थ ही मानना सही है।

प्रश्नोपनिषद् से उद्धृत उपर्युक्त उदाहरणों में हमने तीनों–वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ–को देखा । इनमें व्यंग्यार्थ को समझना सबसे कठिन होता है, यह भी स्पष्ट हो गया। अर्थ वैसा नहीं है जैसा कि वाक्य के शब्द कहते हुए लग रहे हैं, इसको प्रसंग व अन्य कुछ संकेतों से जाना जा सकता है। वेदों में व्यंग्यार्थ ही अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसीलिए, यदि अनृषि इनकी व्याख्या करते हैं, तो वह प्रायः दोषपूर्ण ही होती है। ❑❑

ब्रह्मचर्य बल दिखा

एक बार सरदार विक्रमसिंह ने निवेदन किया–महाराज सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। स्वामी जी ने कहा, "यह सत्य है, ऐसा ही शास्त्रों में वर्णित है।" सरदार जी ने कहा, "शास्त्र में लिखे का प्रमाणित होना कठिन है । आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में ऐसा बल प्रतीत नहीं होता।" उस समय तो स्वामी जी मौन रहे परन्तु कुछ घण्टों के पश्चात् सरदार जी अपनी बग्घी पर सवार हुए ।

स्वामी जी ने उसका पहिया पीछे से पकड़ लिया । घोड़ों ने पूरा बल लगा दिया परन्तु बग्घी नहीं सरकी। सरदार जी ने पीछे मुड़कर देखा तो छोड़ दिया।

महर्षि ने हँसकर कहा–"यह ब्रह्मचर्य बल का प्रमाण मिल गया ।"

ऑनलाइन है भगवान फिर भक्त क्यों हैं परेशान ?

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

जब भारत सहित सम्पूर्ण एशिया में बौद्ध मत का इतना प्रभाव बढ़ चला कि सनातन धर्म विलुप्त होने के कगार पर जाने लगा। तब प्राचीन भारतीय सनातन धर्म परम्परा और विकास के लिए आदि गुरु शंकराचार्य जी सामने आये उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया, शास्त्रार्थ किये और सनातन धर्म के विकास उसकी प्रतिष्ठा के लिए भारत के चार कोनों में चार मठ स्थापित किये। ये मठ साधना के केंद्र बने, जिज्ञासा शांत करने की जगह बने और इन मठों की स्थापना करके आदि शंकराचार्य जी ने उन पर अपने चार प्रमुख शिष्यों को आसीन किया। तबसे ही इन चारों मठों में शंकराचार्य पद की परम्परा चली आ रही है।

यानि चार मठ, बारह ज्योतिर्लिंग इसके अलावा उत्तर से लेकर दक्षिण तक, पश्चिम से पूरब तक हिन्दुओं के अनेकों तीर्थस्थान, मंदिर, और देवस्थान हैं। लेकिन अब आगे ऑनलाइन की दुनिया में चलकर शायद यह आस्था के स्थान तो रहें, लेकिन उनमें श्रद्धालु नजर न आयें, यानि मंदिर से लेकर मठ तक क्या आगे चलकर सब कुछ वीरान होने जा रहा है। क्योंकि दुनिया में सब कुछ ऑनलाइन हो चुका है, आप घर बैठे भगवान के दर्शन भी कर सकते हैं और मंदिर का प्रसाद भी मंगा सकते हैं। यानी सब कुछ ऑनलाइन उपलब्ध है। बस पैसा दीजिये सब कुछ घर बैठे हाजिर है प्रसाद भी और भगवान भी। बर्गर भी और पिज्जा भी।

यानि मनोकामना पूरी करनी हो, या किसी खुशी के मौके पर सत्यनारायण की कथा। हवन कराना हो, दीप यज्ञ या फिर अन्य धार्मिक अनुष्ठान करवाने की चाहत हो, तो अब पुजारी को घर बुलाने की जरूरत नहीं है, देश के सभी तीर्थ स्थान और अधिकतर पुजारी हाइटेक हो चुके हैं। वीडियो कॉल से ही घर बैठे पूजा पाठ कराया जा रहा है। यजमान भी नेट बैंकिंग, गूगल पे, पे.टी.एम. से पुजारी को दान दक्षिणा दे रहे हैं। पूजा पाठ कराने के साथ ही मंदिर का प्रसाद भी घर पहुँच रहा है। सिर्फ इतना ही नहीं विडम्बना देखिये ज्योतिष विद्या के माध्यम से कुंडली या ग्रहों की चाल भी अब विडियो कॉल से ही बता रहे हैं, या कहो उनकी चाल बदल रहे हैं।

यह सुविधा तमिलनाडु सरकार के हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती विभाग के अंतर्गत आने वाले ५३६ मंदिरों में उपलब्ध हो चुकी है। इसके अलावा माँ वैष्णो देवी ट्रस्ट और बालाजी से लेकर अनेकों बड़े मन्दिर और तीर्थस्थान भी अब ऑनलाइन आकर भगवान के दर्शन कराकर प्रसाद भेज रहे हैं।

हालाँकि ये भी इतना आसान नहीं है, ऑनलाइन ठग इसमें भी कूद गये। पिछले दिनों ऑनलाइन प्रसाद के ठगी के एक के बाद एक मामले सामने आये। इसमें वेंकटेश्वर के प्रसिद्ध प्रसाद तिरुपति के लड्डुओं को लेकर ठगी का मामला सामने आया। दूसरा फर्जी तरीके से ऑनलाइन बिक रहे संकटमोचन मंदिर के प्रसाद में भी फर्जीवाड़ा दिखा, जहाँ ५५० रुपए में सिर्फ एक पेड़ा भेजा गया था। इसमें विश्वनाथ मंदिर के प्रसाद का भी फर्जीवाड़ा सामने आया था।

यानि हिन्दुओं ने तीर्थयात्री से ऑनलाइन यात्री तक का सफर तय कर लिया। असल में

वैदिक काल में हमारी ऋषियों की जो परम्परा रही है वो जिज्ञासु परम्परा थी। उस दौरान जिज्ञासा प्रकट करने का समय भी मिलता था। मन की जिज्ञासा शांत करने के लिए लोग गुफाओं में रहने वाले पर्वतों या वन इत्यादि में रहने वाले ऋषि-मुनियों के पास जाया करते थे। ऋषि मुनि भी वर्षाकाल आदि में नगरों में आकर धर्म का ज्ञान दिया करते थे। जिज्ञासा वो केंद्र धीरे-धीरे मंदिरों में बदले, फिर पूजा अर्चना में उसके उपरांत मध्यकाल आते-आते अन्धविश्वास और पाखंड ने जन्म ले लिया।

यानि जिस ईश्वर के दर्शन के लिए ध्यान साधना में जन्म बीत जाता था। आलसी लोगों ने उसकी प्रतिमा बना ली और बिना किसी ध्यान साधना के दर्शन का शार्टकट ईजाद कर लिया। ईश्वर की जगह महापुरुषों की तस्वीरें बना दीं प्रतिमाएं बना दीं। दर्शन के लिए लम्बी-लम्बी लाइनें लगने लगीं। लोगों के लिए भी यह ईश्वर दर्शन का सबसे सरल तरीका बन गया ना ध्यान ना साधना बस कुछ मुद्राएँ पुजारी को दीं और दर्शन कर लिए।

आज वो लाइन ही ऑनलाइन में बदल गयी। जो ये भी नहीं कर सकते उनके लिए दूसरा उपाय भी है वो आजकल आप देख रहे होंगे यानि आज लोग इतने व्यस्त हो गए हैं कि उनके पास ईश्वर की भक्ति के लिए भी समय नहीं हैं, अत: इसका भी जुगाड लगा दिया! इसे भी ऑनलाइन कर दिया। इसलिए कई लोग फेसबुक एवं व्हाट्स एप पर देवी देवताओं की फोटो डालते हैं और फिर लिखते हैं, क्या आपके पास २ मिनट का समय है। दोस्तो, बाबा पर विश्वास है तो दिल से कमेंट करो बाबा आपकी सारी मनोकामना पूरी करेंगे। कुछ अजीबोगरीब तस्वीर डालकर लिखते हैं इग्नोर मत करना आज शनिवार है, जल्दी लाइक करो शाम तक अच्छी खबर मिलेगी।

लोग लाइक करते हैं, शेयर करते हैं या कहो उनकी भक्ति साधना यहीं तक सीमित हो चुकी है। वो एक तस्वीर को लाइक करके खुद को भगवान का भक्त समझ रहे हैं। यानि जो भी हो रहा है आगे इसके धार्मिक नुकसान क्या होंगे! आने वाली सनातन धर्म की नस्ल अपने धर्म के लिए कितनी जागरूक होगी और ईश्वर सच में फेसबुक ट्विटर व्हाट्सएप्प पर ऑनलाइन हैं ऐसे कई सवाल पैदा हो रहे हैं?

जो लोग आज २०२३ में भगवान को ऑनलाइन बता रहे हैं तो शायद वो जानते होंगे कि ईश्वर आदिकाल से ही ऑनलाइन है। ऋषि-महर्षि ध्यान, साधना के बल पर दर्शन किया करते थे। अगर पैसे के दम पर ही दर्शन होते तो ना जाने कितने राजा-महाराजा राजपाट त्याग करके वनों में चले गये, ध्यान साधना में लीन हो गये। सिर्फ ईश्वर के दर्शन के लिए। मन की जिज्ञासा शांत करते थे। अगर ईश्वर के दर्शन पैसे के द्वारा होते तो क्या उनके पास धन दौलत की कमी थी? वो जानते थे कि ईश्वर के दर्शन के लिए मन के तार या कहो आस्था के तार ईश्वर की स्तुति से प्रार्थना से जोड़ने पड़ते हैं ना कि प्रसाद मंगाकर या फोटो प्रतिमा निहारकर।

किन्तु ऑनलाइन की दुनिया में ऐसा कुछ नहीं है। आपको जो देवता पसंद हैं। जो मंदिर पसंद हैं उनके लिए क्रेडिट कार्ड से भुगतान कर ऑनलाइन पूजा कराई जा रही है। महाकाल हो या तिरुपति आप पंजीकरण कराइए...ऑनलाइन भुगतान करिए ...आप की ओर से उन मंदिरों में पूजा करा दी जाएगी। यानि पंजीकरण करवाइए और आपके नाम की डुबकी प्रयाग में या कुंभ मेले में लगवा दी जाएगी! जरा सोचिए...हमारे नाम से कोई दूसरा व्यक्ति पूजा कर रहा है। कोई दूसरा व्यक्ति डुबकी लगा रहा है तो उसका पुण्य हमें

(शेष पृष्ठ २७ पर)

॥ ओ३म् ॥

महायोगी के प्रेरक प्रसंग (२)

–राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! संन्यास की वास्तविक अवस्था कैसी होती है, इस विषय में प्रा० श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने एक संस्मरण में लिखा है– दयानन्द मठ दीनानगर में महात्मा आनन्दमुनि जी से उन्होंने कहा–'मेरे पास आपका वह ऐतिहासिक चित्र है, जो शोलापुर में सत्याग्रह के दिनों स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के साथ खींचा गया था।' तो वे झट बोले–"वह शेषराव (बाघमोर) मर गया। यह आनन्द मुनि है।"

यह कितनी उच्च अवस्था है। कभी-कभी व्यक्ति को अपने त्याग का भी अभिमान हो जाता है। उसका भी त्याग करना संन्यास की उच्च अवस्था है। जब स्वामी आत्मानन्द जी रावलपिण्डी में गुरुकुल (अंग्रेजी विद्यालय) चला रहे थे, तो वीर सावरकर कोहमरी से रावलपिण्डी पधारे थे, तब स्वामी जी ने विचारा–"वीर सावरकर ने अपने राष्ट्र के लिये वह कर्तव्य निभाया है, जिसका स्मरण करते ही मानव नतमस्तक हो जाता है।" यह विचारकर वे अंग्रेजी विद्यालय के सब विद्यार्थियों को लेकर सड़क पर आ गये। सड़क के दोनों ओर विद्यार्थियों को पंक्तिबद्ध खड़ा कर दिया और स्वयं वीर सावरकर की कार को हाथ के संकेत से स्वागत हेतु रोक लिया। वीर सावरकर की जय-जय ध्वनि से आकाश गूंज उठा। स्वामी जी महाराज ने वीर सावरकर को पुष्पमाला पहनाकर अपनी श्रद्धा अर्पित की और चरण स्पर्श किये। कुछ देर वार्तालाप कर उनके समय का ध्यान रखते हुए मार्ग छोड़ दिया। प्राय: संन्यासी किसी श्वेत वस्त्रधारी को प्रणाम नहीं करता, पर संसार ने यह आश्चर्य भी देखा। वास्तव में यह देशभक्ति का सम्मान था।

आचार्य भगवान देव (स्वामी ओमानन्द) जी स्वामी आत्मानन्द जी की पुस्तक 'मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प' छपवा रहे थे। वैदिक साहित्य सदन के प्रबन्धक श्री राजेन्द्र नारायण ने पुस्तक में छापने के लिए स्वामी जी का चित्र माँगा, तो सब ऐषणाओं को सांप की केंचुली की तरह उतार फैंकने वाले संन्यासी ने पत्र में लिखा–"चित्र देने को मन नहीं चाहता मैं इसमें लोकैषणा की घातक झलक देखता हूँ । कृपया नाम मात्र ही पर्याप्त समझें।" चित्र के लिए दोबारा आग्रह करने पर २४ अक्तूबर १९५० को पुन: लिखा–

"मैं तो अनेक दोषों से सम्पन्न एक साधारण जीव हूँ। कपिल कणाद आदि पूज्य महर्षियों का चित्र आज तक किसी ने उनके पुस्तकों में नहीं छपा और उनके जीवन अपने सुगन्ध से आज तक जनता के जीवनों को सुगन्धित कर रहे हैं।" अत: यदि जीवन में कुछ भी गुण हुआ तो बिना ही चित्र के किसी को कुछ लाभ पहुँच ही जायेगा, कृपया पुस्तक में चित्र न दीजिये।"

इस निर्लिप्त संन्यासी का एक प्रसंग श्री रामस्वरूप शास्त्री ने गुरुकुल शादीपुर में सुनाया– एक बार स्वामी जी कहीं उत्सव में प्रचारार्थ गये थे। कई विद्वानों को भोजन के लिए किसी घर पर ले जाया गया। भोजन के बाद किसी विद्वान् ने स्वामी जी से कहा–स्वामी जी दाल में नमक तो था ही नहीं। यह सुनकर स्वामी जी ने कहा– 'आह ! मुझे तो ध्यान ही नहीं रहा। चलो, साधु

को तो पेट भरना है, स्वाद से क्या लेना।"

वैदिक विद्वान् पं० इन्द्रजित् देव जी ने वैदिक भजनोपदेशक श्री ओमप्रकाश वर्मा जी के संस्मरण में लिखा है कि जब स्वामी आत्मानन्द जी ने शादीपुर (यमुनानगर) में झोंपड़ी डालकर उपदेशक विद्यालय (गुरुकुल) आरम्भ कर दिया, तो उन्हीं दिनों मेरे गांव अलाहार के निवासी व मेरे कुटुम्ब के ही श्री पं०केवलराम जी पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। उनकी कोई सन्तान न थी। उन्होंने मुझ से परामर्श किया और अपनी ८ एकड़ (४० बीघा) भूमि गुरुकुल हेतु स्वामी जी को देने का निर्णय कर लिया। मैंने भी इस शुभ कार्य का भरपूर समर्थन किया।

हम स्वामी जी के पास गए व आवश्यक कागज तैयार कराके यह भूमि स्वामी जी को दे दी गई, परन्तु श्री केवलराम जी के बहुत समीपी कुटुम्बियों को जब इस घटना का ज्ञान हुआ, तो वे बहुत दु:खी हुए। वे तो इसी आशा में बैठे थे कि केवलराम जी के मरने के बाद भूमि उन्हें मिलेगी। पर अब उनकी आशा निराशा में बदल गई। एक दिन वे मेरे पास आए और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मुझसे सहायता माँगने लगे। मैंने उन्हें कहा–"चलो, स्वामी जी से मिलते हैं। वे ही कोई सहायता करें तो अच्छा होगा।"

श्री केवलराम द्वारा उस भूखण्ड का दान किए एक वर्ष का काल व्यतीत हो चुका था। उनके कुटुम्बियों ने स्वामी जी के चरणों में उपस्थित होकर पूर्ण विवरण सुनाया। स्वामी जी बड़ी सहृदयता से बात सुनकर बोले–"कहो भाई ! क्या चाहते हो?" वे बोले–"स्वमी जी ! यह भूमि हमारे कुटुम्ब में ही रहे तो अच्छा रहेगा, क्योंकि इससे हमारे परिवार का निर्वाह हो सकेगा तथा तब हम गांव में ही बसे रहेंगे ।"

उनकी बात सुनकर स्वामी जी बहुत द्रवित हो गए। उन्होंने तुरन्त उनके सिर पर अपना हाथ रखा व बोले–"मैं लौटाता हूँ। मैं पण्डित केवलराम जी को समझा दूंगा! अब तुम निश्चिन्त रहो।"

बाद में आवश्यक कागज तैयार करके भूमि उस परिवार को लौटा दी। आज से ७० वर्ष पूर्व दान का दान करने की यह महाघटना सच्चे व पूर्ण योगी की निष्कामता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

सम्भवत: इसी घटना की प्रेरणा रही हो, जो कालान्तर में उसी गुरुकुल के आचार्य श्री राजकिशोर जी ने अपने हाथ में आए हुए एक लाख रुपये तत्काल लौटा दिये। घटना इस तरह की है–एक बार कुछ सज्जन गुरुकुल में आचार्य श्री राजकिशोर जी के पास आये और बोले–पण्डित जी, हम कुछ राशि दान देना चाहते हैं। आचार्य जी बोले–"बहुत अच्छी बात है, दान कितना देना है?" वे बोले–"एक लाख रुपये।" आचार्य जी बोले–"आपको गुरुकुल में दान देने की प्रेरणा कैसे मिली?" वे बोले–"हमने कुछ मास पूर्व अनाथाश्रम में दान देने का संकल्प लिया था।" यह सुनकर आचार्य जी बोले–"फिर तो आप कहीं ओर जाइये, यह तो गुरुकुल है, अनाथाश्रम नहीं।" उनके बार-बार आग्रह करने पर भी आचार्य जी ने वे रुपये नहीं लिये।

स्वामी आत्मानन्द जी योग की उच्च अवस्था तक पहुँच कर भी समाज व राष्ट्र के हित के प्रति उदासीन नहीं थे। चाहे हैदराबाद का सत्याग्रह हो; सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध के विरुद्ध सत्याग्रह हो; या हिन्दी सत्याग्रह हो; सब में स्वामी जी आगे रहे।

९ सितम्बर १९५६ को अम्बाला में स्वामी आत्मानन्द जी के सभापतित्व में हिन्दी सम्मेलन हुआ। ५ मई १९५७ को जालन्धर में हुई बैठक में निर्णय लिया गया कि ३० मई से सत्याग्रह आरम्भ कर दिया जाए। सब राज्यों की आर्य

(शेष पृष्ठ २२ पर)

॥ ओ३म् ॥

जन्म-पुनर्जन्म होना सत्य सिद्धान्त है

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : ०९४१२९८५१२१)

हम प्रतिदिन मनुष्य व पशुओं आदि को जन्म लेते हुए देखते हैं। यदि हम इन प्राणियों के जन्मों पर विचार करें तो अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं जिनके उत्तर हमें साधारणत: नहीं मिलते। मनुष्य व उसके बच्चे का जो शरीर एवं उसमें चेतन जीवात्मा होता है, वह माता के शरीर में कैसे आता है व कैसे शरीर बनता है, इसका उत्तर अनेक मत-मतान्तरों के आचार्यों, अनुयायियों व वामपन्थियों में से किसी के पास नहीं है। नास्तिक तो यह एक प्राकृतिक घटना मानकर और यह कहकर कि मनुष्य के बच्चे के शरीर का कर्ता कोई नहीं है, यह अपने आप बनता और उत्पन्न होता है, अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। यह उत्तर उचित नहीं है। संसार में सभी रचनाओं का कर्ता अवश्य होता है। हम जितने भी भौतिक पदार्थ पेन, पेंसिल, कम्प्यूटर, घड़ी, भोजन, वस्त्र, भवन, वाहन आदि को देखते हैं, इनमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो स्वत: बना हो। सभी का कर्ता वा निमित्त कारण तथा उपादान कारण अवश्य कोई होता है। यदि कोई सामान या वस्तु किसी उद्योग में बनी है तो वहाँ भी उसे बनाने वाले मनुष्य होते हैं और यदि मशीन पर बना है तो उस मशीन को भी मनुष्य ही बनाते हैं।

मनुष्य के शरीर को माता के गर्भ में जिस सत्ता ने बनाया वह सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सृष्टिकर्ता परमेश्वर है जो इस संसार सहित सभी अपौरुषेय रचनाओं को बनाती है। अवैदिक मत-मतान्तर एवं वामपंथी विचारधारा के लोग इस रहस्य को नहीं जान सकते क्योंकि उनके मत के ग्रन्थों में इस विषय का उचित व आवश्यक ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान वेद एवं ऋषियों द्वारा रचित वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत गीता भी पुनर्जन्म का समर्थन व पुष्टि करती है।

वेद और वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि संसार में तीन अनादि, नित्य, अनुत्पन्न, अविनाशी एवं अमर पदार्थ हैं जो ईश्वर, जीव व प्रकृति के नाम से जाने जाते हैं।

ईश्वर इस सृष्टि व सभी अपौरूषेय रचनाओं का कर्ता व रचयिता है। वह सर्वातिसूक्ष्म व सर्वव्यापक है, चेतन है, ज्ञानवान है तथा सर्वशक्तिमान है। अनादि होने से वह न केवल इस सृष्टि में अपितु इससे पूर्व भी अनादिकाल से इस सृष्टि व जीवात्माओं के लिये मनुष्य आदि प्राणियों के शरीरों को रचता आ रहा है। उसके लिये सृष्टि रचना व मनुष्यादि प्राणियों के शरीर को बनाना स्वाभाविक कार्य है। संसार में ईश्वर के अतिरिक्त एक अन्य चेतन सत्ता है जिसे जीवात्मा या आत्मा कहते हैं। यह चेतन, एकदेशी, सूक्ष्म, अल्प ज्ञान वाली, अनादि, नित्य, अविनाशी, अमर, कर्म करने वाली तथा जन्म व मृत्यु को प्राप्त होने वाली सत्ता है। इसी प्रकार तीसरी अनादि सत्ता सूक्ष्म प्रकृति है। प्रकृति अचेतन अर्थात् जड़ सत्ता होती है। इसे आत्मा की भांति किसी प्रकार का किंचित सुख व दु:ख नहीं होता। यह सत्ता ईश्वर व जीवात्मा द्वारा नाना प्रकार से उपादान कारण के रूप में उपयोग में लाई जाती

है। जब यह सृष्टि नहीं होती उस अवस्था को प्रलय अवस्था कहते हैं। उस अवस्था में ईश्वर प्रलय की अवधि पूर्ण होने पर सृष्टि को रचते हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपनी आत्मा व शरीर के अंगों द्वारा रचना करते हैं, उसी प्रकार से ईश्वर भी सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं सृष्टिकर्ता होने से सभी अपौरूषेय पदार्थों की रचना जीवों के कल्याण के लिये करते हैं। जीवात्मा मनुष्य जीवन में सृष्टि के पदार्थों का उपयोग करते हुए इससे सामग्री लेकर अपने भवन, वस्त्र आदि अनेक आवश्यकता की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। यह क्रम इस सृष्टि में अनादि काल से चला आ रहा है।

जिस प्रकार इस जन्म में मनुष्य होकर हम शुभ व अशुभ कर्म करते हैं, इसी प्रकार पूर्वजन्म में भी हमारी आत्मा ने कर्म किये थे। उन कर्मों का शुभ व अशुभ फल हमें भोगना होता है। कुछ क्रियमाण कर्मों का फल हमें कर्म करने के साथ या कुछ समय बाद इसी जन्म में मिल जाता है। जिन कर्मों का फल जीवात्मा को पूर्वजन्म में नहीं मिल पाता उस कर्म-समुच्चय को प्रारब्ध कहते हैं। उन कर्मों का फल भोगने के लिये ही हमारा यह जन्म हुआ व होता है। इसी प्रकार मनुष्य की ही तरह परमात्मा कर्मानुसार जीवात्मा को मनुष्य सहित पशु, पक्षी आदि अनेकानेक योनियों में जन्म देते हैं जिससे उनमें विद्यमान जीवात्मायें अपने-अपने पूर्वकर्मों का फल भोग सकें। यह क्रम व सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है, वर्तमान में भी विद्यमान है और भविष्य में भी इसी प्रकार से चलता रहेगा। हम प्रत्येक जन्म में अपने पूर्व किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये जन्म लेते रहेंगे और अपने कर्मों का फल भोगते रहेंगे। इसी को कर्म-फल व्यवस्था कहा जाता है।

मनुष्यों को पूर्व जन्मों की स्मृति क्यों नहीं होती? इसका उत्तर यह है कि हमें तो इस जन्म के भी किये हुए अधिकांश कर्मों का ज्ञान व स्मृति नहीं होती है। हमने कल, परसों, उससे पूर्व के दिनों में क्या भोजन किया था, कौन-कौन से वस्त्र किस-किस दिन पहने थे, किन-किन व्यक्तियों से मिले थे, कहाँ-कहाँ गये थे, उन सब बातों को याद नहीं रख पाते। दो व्यक्ति आपस में बातें करते हैं या एक व्यक्ति उपदेश करता है, उसे यदि कहा जाये कि आपने आधा घण्टा जो उपदेश किया है जिसे हमने रिकार्ड किया है, उन्हीं शब्दों व वाक्यों को क्रम से पुनः दोहरा दीजिये तो वह ऐसा नहीं कर सकता। इसका कारण मनुष्य की स्मृति का समय के साथ साथ कुछ भाग को भूलना है। दो जन्मों के बीच एक मृत्यु आती है जिसमें हमारा पुराना शरीर नष्ट हो जाता है। नया शरीर मिलता है। हमारा भौतिक मन व अन्य इन्द्रिय आदि इस जन्म में नये प्राप्त होते हैं। किसी की मृत्यु होने पर यह आवश्यक नहीं कि मृतक मनुष्य का जन्म मनुष्य योनि में ही हो। हो सकता है कि हम पूर्वजन्म में मनुष्य रहे हों या हो सकता है कि हम किसी अन्य योनि में रहे हों। इस कारण से विस्मृति का होना सामान्य बात है। यदि हम एक बच्चे को देखें जो कुछ दिन पूर्व जन्मा है तो हम पाते हैं कि वह अपनी माता के दुग्ध का स्तनपान करना जानता है। यह ज्ञान व अनुभव उसे इस जन्म में तो होता नहीं, यह ज्ञान व अनुभव उसके अनेक पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण से होता है। बच्चा सोते हुए स्वप्न देखता है और उसमें कभी वह मुस्कराता है और कभी चिन्ता व दुःख के भाव उसके चेहरे पर देखने को मिलते हैं, इसका कारण भी उसकी पुरानी स्मृतियाँ ही होती हैं। एक परिवार में दो जुड़वा बच्चे उत्पन्न होते हैं उनमें से एक तीव्र बुद्धि वाला होता है तो दूसरा मन्द बुद्धि वाला। इसका कारण भी उनके पूर्वजन्म के संस्कार हैं। यदि पूर्वजन्म न होता तो दो सगे जुड़वा भाईयों

में यह अन्तर न होता क्योंकि दोनों के माता-पिता, परिवेश व परवरिश एक समान है इसलिये अन्तर नहीं होना चाहिये। यह भी हम मनुष्यों व इतर प्राणियों के पूर्वजन्म का पुनर्जन्म होने का प्रमाण है। मनुष्य का मन ऐसा है जिसे एक समय में एक ही ज्ञान होता है। हम हर समय वर्तमान की बातों के बारे में सोचते विचारते रहते हैं। इस कारण पुरानी स्मृतियाँ विस्मृत रहती हैं। यह भी पूर्वजन्म की स्मृतियों के न होने का कारण है।

विज्ञान का नियम है कि संसार में मनुष्य कोई नया पदार्थ नहीं बना सकता। दर्शन की भाषा में अभाव से भाव तथा भाव का अभाव नहीं होता। संसार में जो चीज बनी है व बनाई जाती है उसका कोई न कोई उपादान कारण अवश्य होता है। रोटी आटे से बनती हैं। बिना आटे के रोटी नहीं बनाई जा सकती। हम भोजन करते हैं। उसमें अनेक पदार्थ होते हैं। उन पदार्थों व बनाने वाले के बिना वह भोजन तैयार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार माता के शरीर से सृष्टि के नियमों के अनुसार जो सन्तान जन्म लेती है, वह जीवात्मा व शरीर में प्रयुक्त पदार्थों के अभाव से उत्पन्न नहीं होती अपितु उस आत्मा व उसके शरीर के पदार्थों का पहले से अस्तित्व होता है। वह आत्मा पूर्वजन्म में कहीं मृत्यु को प्राप्त होती है, उसके बाद उसका पुनर्जन्म ही इस जन्म में होता है। आत्मा को न तो परमात्मा बनाता है और न यह स्वयं बन सकती है। संसार में जितने लोगों को भी हम जन्म लेते हुए देखते हैं वह सब पूर्वजन्म की जीवात्माओं की मृत्यु होने के बाद जन्म लेते हैं। यह मान्यता वैदिक साहित्य वेद, दर्शन आदि से पोषित, सत्य एवं प्रामाणिक है। जिन लोगों के मत-पन्थों में यह ज्ञान नहीं है वह अपने मतों के प्रति कृतज्ञ व समर्पित होने के कारण सत्य को स्वीकार नहीं करते। कोई सत्य को स्वीकार करे या न करे, सत्य तो सत्य ही रहता है। हमारे व किसी मनुष्य के स्वीकार करने व न करने से बदलता नहीं है। हाँ, सत्य को स्वीकार न करने से हम अपनी हानि अवश्य कर लेते हैं। यह हानि इस प्रकार से होती है कि हम मत-मतान्तरों के चक्र में फंस कर वेदाध्ययन का त्याग कर देते हैं और ईश्वर व आत्मा सहित संसार के सत्य ज्ञान, ईश्वरोपासना, यज्ञ, सत्संग एवं पंचमहायज्ञ आदि को छोड़कर पाप में प्रवृत्त रहते हैं। निर्दोष तथा संसार के लिये लाभकारी मूक पशुओं को मार व मरवाकर उनके माँस का भक्षण करते हैं, जिससे हमें जन्म-जन्मान्तर में मनुष्य जन्म से वंचित होकर अनेक पशु योनियों में रहकर दुःख भोगने पड़ते हैं। जिन मताचार्यों के कारण हम सत्य से दूर रहते हैं, उनको भी ईश्वर उनके कर्मानुसार ही फल देता है। वह भी परजन्म में श्रेष्ठ मनुष्य योनि से वंचित हो जाते हैं, ऐसा अनुमान किया जाता है।

पुनर्जन्म का उदाहरण हम पुराने वर्ष के अन्त व नये वर्ष के आरम्भ के आधार पर भी दे सकते हैं। एक वर्ष बारह महीनों का होता है। ३१ दिसम्बर को पाश्चात्य वर्ष समाप्त होता है। उसके अगले ही दिन नया वर्ष आरम्भ होता है और तिथि १ जनवरी कही जाती है। इसे हम पूर्व वर्ष का मरना वा अन्त होना तथा उसी का नये वर्ष के रूप में जन्म कह सकते हैं। इसी प्रकार से हम सप्ताह के सात दिनों व वारों रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार आदि का उदाहरण भी ले सकते हैं। शनिवार को सप्ताह समाप्त हो जाता है और वही सप्ताह पुनः रविवार से आरम्भ हो जाता है। यह भी तो एक प्रकार से पूर्व सप्ताह का पुनर्जन्म ही है। प्रलय काल तक यह व्यवस्था मृत्यु और जन्म का चक्र चलता रहेगा। मृतक जीवात्मा गर्भावस्था तथा जन्म लेकर शैशव, किशोर, युवा, प्रौढ़ तथा वृद्धावस्था को प्राप्त होती है और शरीर के दुर्बल

व रोगी होने पर पुराने वस्त्रों की भांति ईश्वर की प्रेरणा से अपने शरीर को छोड़कर चली जाती है। इस जन्म लेने वाली जीवात्मा को ईश्वर उसके कर्मानुसार नया शरीर व जन्म देकर पुनः कर्म भोग व कर्म करने के लिये पास व दूरस्थ स्थान पर जन्म देते हैं। सिद्ध योगी अपने पूर्वजन्मों को देख व जान सकते हैं, ऐसा योगदर्शन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है।

पुनर्जन्म के समर्थन में अनेक उदाहरण हैं। पुनर्जन्म पर शास्त्रीय सहित वैदिक विद्वानों के लेख एवं ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वैदिक धर्म सत्य मान्यताओं पर आधारित धर्म है। मनुष्य का सर्वाधिक लाभ वैदिक धर्म को जानने व पालन करने में है। पौराणिक व सनातनी मत सत्य वैदिक धर्म के सर्वथा अनुकूल व अनुरूप नहीं है। वैदिक धर्म वह है जिसका प्रतिपादन ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश तथा आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थ लिखकर किया है। आप यदि पुनर्जन्म को मानते हैं तो अच्छी बात है अन्यथा इस पर विचार करें और वेदाध्ययन कर सद्कर्म करें जिससे यह जन्म व परजन्म सुखी व उन्नत अवस्था को प्राप्त हो सके। ओ३म् शम्। ❑❑

प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की

–सत्यदेव प्रसाद आर्य मरूत, बिहार (मो०–९९५५५३४८८७)

प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की
खून जब भी गिरा और जहाँ भी गिरा
आहुति हमने स्वेच्छा से सानन्द दी।
प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की ।।

सीना ताने खड़े जो श्रद्धानन्द थे
रॉलट एक्ट जुलूस दिल्ली घंटाघर पर पहुँचा
जामा मस्जिद के मिम्बर पर श्रुति मन्त्र पढ़े
'हम' हिन्दू और मुस्लिम तो अलग हैं नहीं।
'शुद्धि आन्दोलन' चलाए प्रखर रूप धर
गोलियाँ अब्दुल रशीद की खानी पड़ी ।।
प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की ।।

रक्त साक्षी बने आर्य मुसाफिर रहे
लाल जाति के बचाए ट्रेन से कूदकर ।
सिर चढ़ा था प्रचार का धुन इस कदर
ऋषि दयानन्द जीवन उजागर किए
पेट फड़वाया कातिल से लेखराम ने
रुग्ण पुत्र की भी कुर्बानी देनी पड़ी ।।
प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की ।।

खरे उतरे कसौटी पर थे लाजपत
और प्रकाशक अमर महाशय श्री राजपाल ।
आर्यों की संस्कृति को जो रखे अक्षुण्ण
गर्व गौरव से ठोके जिन्होंने थे ताल ।
कातिलों ने मुहैय्या कराया हमें,
प्यारे प्रभुवर की गोदी महानन्द की ।।
प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की ।।

खोल दो सारे दरवाजे और खिड़कियाँ,
इच्छा प्यारे प्रभु की पूर्ण हो निर्विघ्न ।
दीप जलता रहे, स्नेह भरता रहे,
हो कमी न किसी को किसी चीज की ।
अपना भारत जगत गुरु रहे आज भी
स्वप्न सार्थक यही थी गुरुदत्त की ।।
प्रेरणा लहलहाई दयानन्द की ।।

(प्रस्तुति : अमित सिवाहा)

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन

–प्रस्तुति : भावेश मेरजा (मो० ९८७९५२८२४७)

- कोई भी व्यक्ति परमात्मा की मूर्ति नहीं बना सकता है–असम्भव होने से।
- इसलिए कोई भी व्यक्ति परमात्मा की मूर्ति की पूजा नहीं कर सकता है और न ही किसी मन्दिर में स्थापित कोई मूर्ति परमात्मा की मूर्ति हो सकती है।
- तथापि अज्ञान आदि दोषों के कारण प्राय: हिन्दू लोग एवं अन्य मतावलम्बी लोग भी पत्थर, मिट्टी, धातु, काष्ठ आदि से निर्मित मूर्ति आदि जड़ पदार्थों को परमात्मा समझकर उनकी पूजा करते हैं, जड़ को चेतन समझकर व्यवहार करते हैं, और इसी व्यवहार को मूर्ति पूजा कहा जाता हे और ऐसा करने वाले को मूर्तिपूजक कहा जाता है।
- वास्तविक ईश्वर की उपासना, ध्यान आदि को छोड़कर जड़ मूर्तियों को पूजने वाले को मूर्तिपूजक कहा जाता है।
- विभिन्न प्रकार की मूर्तियों की पूजा की जाती है, जिनमें से अनेक मूर्तियाँ ऐतिहासिक महापुरुषों की भी होती हैं। परन्तु मूर्तिपूजक लोग अपनी अविद्या अज्ञान के कारण उन महापुरुषों को ही परमात्मा या परमात्मा का अवतार समझकर उनकी मूर्तियों की पूजा करते हैं। अनेक काल्पनिक देवी-देवताओं, पशुओं आदि की भी मूर्तियों की पूजा होती है।
- ऐतिहासिक महापुरुषों के सत्य इतिहास से, उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों से हमें प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए और लाभान्वित होना चाहिए। उनकी मूर्तियों या चित्रों की पूजा करने में बुद्धिमत्ता नहीं है । श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि महापुरुष थे, वे ईश्वरभक्त थे, स्वयं ईश्वर नहीं थे।
- इतिहास की सुरक्षा की दृष्टि से, स्मरण के लिए महापुरुषों की यथायोग्य मूर्तियों, चित्रों या स्टेच्यू आदि के सदुपयोग का निषेध नहीं किया जा सकता।
- वैसे तो पूजा का अर्थ सेवा, प्रिय आचरण करना आदि होता है। इस अर्थ में केवल जीवित महात्माओं, गुरुजनों, माता-पिता आदि माननीयों की ही पूजा हो सकती है, और वह हमारा कर्तव्य भी है। मृत महात्माओं, गुरुजनों, माता-पिता आदि के जीवन के उज्ज्वल पक्ष का अनुकरण करना, उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करना, उनके सत्य इतिहास, जीवन चरित्र, उपदेश, ग्रन्थों आदि के माध्यम से ज्ञान एवं प्रेरणा प्राप्त करना–यही करणीय होता है और यही सम्भव है। उनकी पूजा जैसी जीवितों की होती है वैसी पूजा करनी सम्भव नहीं है–विद्यमान न होने से। किसी जीवित या मृत व्यक्ति की मूर्ति, चित्र स्टेच्यू आदि देखने से हमारे मन में उस व्यक्ति के बारे में जो ज्ञान से पहले से विद्यमान होता है उसके आधार पर हमारे मन में उस व्यक्ति के सम्बन्ध में स्मृति उभरती है, उठती है। इस दृष्टि से वह जड़ पदार्थ होते हुए भी उस व्यक्ति विषयक स्मृति उठाने में निमित्त अवश्य बनता है।
- उदाहरण के रूप में भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में अल्बर्ट आईंस्टाइन की तस्वीर रखने से विज्ञान के विद्यार्थियों को आईंस्टाइन की वैज्ञानिक प्रतिभा उनके कार्य उनके

(शेष पृष्ठ २७ पर)

उपासना

व्याख्याता–शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र जी देहलवी

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ *(यजु० २५।२१)*

स्तुति किसकी करनी चाहिए और क्यों करनी चाहिए, यह प्रश्न आज साधारण जनता के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। केवल इतना ही नहीं इसके साथ अन्य अनेक प्रश्न भी वे करते हैं। किन्तु प्राचीन काल के पुरुष यह शंका नहीं किया करते थे कि स्तुति, प्रार्थना और उपासना किसे कहते हैं और यह क्यों करनी चाहिए। उनका आचार ऊंचा था। आजकल के मनुष्यों में समझ कम और कुतर्क अधिक है, आचार नहीं है।

जो परमात्मा को नहीं मानते उनसे तो हमें कुछ भी नहीं कहना है, लेकिन मानने वाले भी कई बार कहते हैं कि जब हमें परमात्मा हमें कर्मों का फल देगा, तो उसकी स्तुति आदि हम क्यों करें? उसकी स्तुति आदि करना उसकी खुशामद ही तो है। यह भी देखने में आता है कि उपसना करने वाले झूठे और बेईमान हैं तथा उपासना न करने वाले अक्सर अच्छे होते हैं फिर यह भी प्रश्न है कि भगवान ने नास्तिक क्यों उत्पन्न किये? इसका भी कारण है। परमात्मा ने इस संसार में जो कुछ किया है, ठीक ही किया है। भगवान को किसी काम से कोई हानि लाभ नहीं। वह पूर्ण है। उसमें किसी भी प्रकार का कोई जोड़ या बाकी नहीं। मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए हो उसने यह सब इन्तजाम किया।

नास्तिक लोगों को उत्पन्न करने का लाभ यह है कि जो मनुष्य अपने को ईश्वर भक्त कहते हैं, किन्तु इनके कर्म गिरे हुये हैं और नास्तिक का आचरण ऊंचा है, तो फिर ईश्वर को मानने से और स्तुति प्रार्थना और उपासना करने से क्या लाभ? भगवान के गुणों का कोई प्रदर्शन नहीं होता। जो नाम के उपासक हैं, वे अपने काम से भगवान को नहीं मानते हैं लेकिन जो नाम के उपासक नहीं, वे काम से भगवान को मानते हैं। यह शंका करने वालों ने उन्हें पेश किया।

भगवान तो सदा भक्तों का साथी होता है। वह भक्त के वश में सदा से होता आया है। भगवान हमें कर्मों का फल देगा, उपासना का फल देगा। भगवान ने हमें बहुत सी चीजें दी हैं हमें उसको धन्यवाद देना चाहिए। शंका करने वाले कहते हैं कि यह बात तो है, लेकिन इतनी सन्ध्या करने की क्या आवश्यकता है? नहीं, इसका भी फल है। क्या? मन की दो वृत्तियाँ होती हैं, अन्तर्मुख और बहिर्मुख। वृत्तियों का केन्द्र नाभि है। वृत्तियाँ जितनी भी दूर जाती हैं, उनको कौन रोकता है? नाभि। जिस प्रकार कोई गधा या घोड़ा एक खूंटे में बंधी रस्सी से बंधा हुआ है, वह गधा या घोड़ा उस रस्सी से बाहर नहीं जा सकता। जगत में जहाँ तक लाभ लेना चाहिए वहाँ तक हमारी प्रवृत्ति जानी चाहिए, सीमा से बाहर नहीं। अति सब जगह बुरी होती है–"अति सर्वत्र वर्जयेत" जिस प्रकार आचार तो ठीक है यदि उसके साथ अति लगा दें तो अत्याचार हो जाता है। इसलिए जगत् में अति किसी काम में नहीं करनी चाहिए और मर्यादा में ही रहना चाहिए।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्याँ जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ (यजु० ४०।१)

इस संसार में जो कुछ भी है उसमें परमात्मा बसा हुआ है। इसलिए इस जगत को त्याग-भाव से ही भोगना चाहिए इसमें फंसना नहीं चाहिए और लिप्त नहीं होना चाहिए संसार की ओर खिंचना नहीं चाहिए लेकिन इसका मुकाबला करना चाहिए।

लार्ड वेम्ले की माता अपने पुत्र से कहती है कि यदि तुम यह मालूम करना चाहो कि कौन-सा आनन्द ग्राह्य है और कौन-सा त्याज्य है, तो सदा इस नियम को याद रखो कि जो बात तुम्हारी विवेक शक्ति को निर्बल कर दे, तुम्हारी कोमलता को बिगाड़ दे, ईश्वर सम्बन्धी विचारों को क्षीण कर दे, जो शरीर के प्रभाव और शक्ति को मन पर चढ़ा दे वह तुम्हारे लिये पाप है। सन्ध्या में भी यही बात है। परमात्मा का चिन्तन करते हुए हम संसार की मर्यादा से बाहर न हो जायें, यही पुल सन्ध्या का है। यदि कहें कि तब तो हर समय ही सन्ध्या करते रहना चाहिए, नहीं ऐसा करने से तो अव्यवस्था हो जायेगी। निरन्तर किसी काम के करने में कोई आनन्द नहीं है।

यदि हम पेट भर कर हलवा खा लें, उसके बाद फिर कोई कहे कि हलवा और खा लो, तो तुम्हारी इच्छा हलवा खाने के लिए बिल्कुल न होगी। एक विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिए कितना परिश्रम करता है, लेकिन जब एक बार पास हो गया तो इस बात को सुनकर जो उसे आनन्द हुआ वह प्रतिक्षण घटता चला जाता है। इससे यह पता लगता है कि इष्ट पदार्थ की प्राप्ति में ही आनन्द है। एकाग्रता होने से आनन्द की प्राप्ति होती है। परमात्मा की लहर हममें दौड़ जाती है। परमात्मा आनन्दधन है उसकी शरण में जाने से कोई भी दुःख शेष नहीं रहता। तो क्या बिना सन्ध्या किये परमात्मा हमारे दुःख दूर नहीं कर सकता? ऐसी बात नहीं है। मन में दुःख दूर करने की भावना तो रखनी ही पड़ेगी। यदि आपके मन में न हो तो भला आप अपनी अंगुलियाँ को फैला कैसे सकते हैं? जब अंगुलियाँ को फैलाने की बात मन में होगी तभी अंगुलियाँ फैलेंगी। इसलिए यदि हम सदा परमात्मा का चिन्तन रखेंगे, तो मर्यादा से बाहर नहीं हो सकेंगे।

शंका करने वाले कहते हैं कि सन्ध्या एक समय ही पर्याप्त है फिर प्रातः और सायं दो बार सन्ध्या करना क्यों बताया? देखिये आप साफ कुर्ता पहनते हैं, आप यह नहीं चाहते कि वह मैला हो जाये, बहुत सावधानी आप रखते हैं कि आपका कुर्ता साफ ही रहे, किन्तु फिर भी वह मैला हो ही जाता है। इसी प्रकार आप एक बार सन्ध्या करके अपना मन पवित्र बनाते हैं तो फिर उसको पवित्र रखने का प्रयत्न करते रहने से भी उसमें अपवित्रता आ ही जाती है। जब हमारा स्वार्थ दूसरे के स्वार्थ से टकराता है, तब मन में मलिनता का आ जाना भी स्वाभाविक हो जाता है।

प्रातःकाल की सन्ध्या से रात के पाप नष्ट होते हैं और सायं काल की सन्ध्या से दिन में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। मुसलमानों न भी पांच बार की नमाज को महत्व दिया है। उनका कुरान कहता है कि अपनी नमाजों की हिफाजत करो और बीच की नमाज की भी हिफाजत करो। बीच की नमाज को विशेष रूप से इसलिए कहा कि इस नमाज का समय दिन के तीसरे पहर ४ बजे का होता है, उस समय सब मनुष्य अपने काम धन्धे में जुटे रहते हैं। कुरान का अभिप्राय यह है कि जब तुम अपने सांसारिक कार्यों में उलझे हुए हों, उस समय भी परमात्मा का चिन्तन करते रहो। हम प्रातः सायं भगवान के गुणों

से वंचित न हो जायें इसलिए दोनों समय सन्ध्या करना आवश्यक है।

स्तुति का अर्थ प्रशंसा करना है। उस परमात्मा का परिचय प्राप्त करना स्तुति कहलाता है। जब परिचय हो गया तब उसके प्रति प्रेम भी उत्पन्न होगा। जब हमें यह मालूम होगा कि भगवान ने हमें कैसे अच्छे पदार्थ दिये हैं तभी उसके प्रति हमारा प्रेम उत्पन्न होगा। माता हमें अच्छे पदार्थ देती है। हमारे हित का काम करती है इसलिए हम उससे प्रेम करते हैं। इसी प्रकार भगवान् को गुणानुवाद करके यदि हम उसका नाम लेंगे तभी तो हमें रस का स्वाद मिलेगा और परमात्मा के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। आज जनता सूरैया से परिचित है, उसकी स्तुति करती है इसलिए उसके प्रति जनता का प्रेम है। उसको देखने के लिए अपार जन-समूह एकत्र हो जाता है। किन्तु उस भगवान् की स्तुति आज जनता नहीं करती, उसकी प्रशंसा में यदि घण्टा व्यतीत हो जाये, तब भी कम है। परमात्मा के पास वह कौन सी मशीन लगी है जिससे वह समुद्र के खारे जल को स्वच्छ और मधुर बना देता है, फिर उसे किस सुन्दरता से बरसाता है? उसे देखने में भी कितना आनन्द आता है। आपके बढ़िया फव्वारे को देखकर भी वह आनन्द प्राप्त नहीं होता।

ईश्वर की स्तुति करते हुए हमें मन में यह धारणा बनानी चाहिये कि मैं किस प्रकार उसके इन अमृत पुत्रों को आनन्द पहुँचा सकता हूँ? हम परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर धारण करें। परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए हमें परमात्मा की सोहबत में बैठना चाहिए; शैतान की सोहबत में हम न रहें जो कि दुनिया को सन्मार्ग से भटकाने वाला है। पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट सदा ही सोचता है कि मैं अपराधी को किस प्रकार जेल भेजूं? हमें भगवान् की सोहबत में रहकर भगवान् के गुणों को धारण करना चाहिए। सन्ध्या करने से हम भगवान् की सोहबत में बैठते हैं। देखिये जब कोई सन्ध्या करने बैठता है तब उसके आस-पास के सब मनुष्यों और बच्चों को भी चुप कर दिया जाता है कि देखो वे सन्ध्या कर रहे हैं? वे भगवान् की सोहबत में बैठे हैं, इस समय चुप रहो। ऐसा न हो कि तुम्हारे शोर मचाने से वे भगवान् की सोहबत में न रह सकें।

सन्ध्या का तात्पर्य इसके सिवाय कुछ भी नहीं है कि आप परमात्मा जैसा अपने आपको बनाने का प्रयत्न करें। स्तुति से प्रेम उत्पन्न होने के बाद प्रार्थना की जाती है। उसका प्रकार यह है–

ओं तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । ओं वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
ओं बलमसि बलं मयि धेहि । ओं ओजोऽसि ओजो मयि धेहि ।
ओं मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि ।

(यजु० ३।१७)

हे भगवान् ! आप तेजस्वी हैं, मुझे भी तेज प्रदान करो। उत्पादक शक्ति से युक्त हैं, मुझे भी उत्पादन शक्ति प्रदान करो। आप बलवान हैं, मुझे भी बल प्रदान करो। आप दुष्टों के दण्ड देने वाले हैं, मुझे भी दुष्टों को दण्ड देने की सामर्थ्य प्रदान करो। आप सबसे बढ़कर सहनशील हैं मुझे भी सहनशीलता प्रदान करो। प्रार्थना के बाद उपासना करनी चाहिए। उपासना का अर्थ है–निकट बैठना। परमात्मा के गुणों को धारण करके उसके समीप बैठना ही उपासना कहलाता है। जो सच्चा उपासक है वह पहाड़ जैसा बड़े से बड़े दु:ख आने पर भी नहीं घबरायेगा और बड़े से बड़े सुख में भी इतरायेगा नहीं।

स्तुति से प्रेम उत्पन्न होता है प्रार्थना से अभिमान का नाश होता है, उत्साह में वृद्धि होती है

और सहायता मिलती है। उपासना करने वाले को कोई भी भय नहीं रहता ।

लोग कहते हैं कि मूर्तिपूजा से क्या हानि है? मैं पूछता हूँ कि क्या मूर्ति कुछ अनुभव करती है? मैं मूर्ति के विरुद्ध नहीं किन्तु आप तो उस मूर्ति के प्रति चेतनवान व्यवहार करते हैं। आपके पिता जी की मृत्यु हो गई और उनका शव वहाँ पर पड़ा है आप अपने मृत-पिता के मुख में दवाई डालें, तो क्या उससे उनहें कुछ लाभ होता है? राम की मूर्ति आप रखें, फिर राम राम कहते रहें, तो उससे क्या होगा?

यदि राम की मूर्ति को देख-देख कर उनके चरित्र को याद करें और तदनुकूल व्यवहार करें, तो कुछ लाभ हो भी सकता है। किसी के चरित्र से कोई लाभ नहीं। हम मूर्ति के सामने बैठ जाते हैं, किन्तु अपने चरित्र को नहीं बनाते। गुजरे हुए महापुरुषों के चित्रों को हम इनके चरित्र के आधार पर ही बनाते हैं, तो फिर उनके चित्र बनाने की आवश्यकता ही नहीं। जब कि चरित्रों के आधार पर ही हम उनके चित्र की भी कल्पना कर सकते हैं, फिर चित्र बनाने की आवश्यकता ही क्या रही? हमने एक पत्थर को खुद ही कांट-छांट कर रख दिया और उनका नाम भगवान रख लिया। यह बहुत उचित कैसे हो सकता है? हमें करना तो कुछ और था ओर हम करने लगे कुछ और–

बुतपरस्तों का दस्तूर निराला देखो ।
खुद तराशा है मगर नाम खुदा रखा है ॥

(प्रस्तुति: 'अवत्सार')

महायोगी के प्रेरक प्रसंग (२) (पृष्ठ १३ का शेष)

समाजों को निर्देश भेज दिये गये और 'सद्भावना यात्रा' के प्रथम यात्री सर्वाधिकारी स्वामी जी महाराज नियुक्त हुए। रोग से पीड़ित होते हुए भी स्वामी जी ने आन्दोलन जारी रखा। प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के साथ पत्र व्यवहार करते रहे।

सरकार ने सत्याग्रहियों पर बहुत अत्याचार किये। फिरोजपुर जेल के खूंखार कैदियों से २४ अगस्त को सत्याग्राहियों पर आक्रमण करवाया, जिसमें लगभग ४०० सत्याग्रही घायल हो गये और उनकी हड्डियाँ टूट गईं। नया बांस (रोहतक) का आर्य वीर सुमेर सिंह तो शहीद ही हो गया। इससे क्रोधित होकर स्वामी जी ने ४ सितम्बर को कहा– "श्री नेहरू जी के हृदय में इस प्रकार की घटनाओं से पीड़ित व्यक्तियों के लिए दया और सहानुभूति का कोई स्थान नहीं है।...इस प्रकार के शब्द उस व्यक्ति के मुख से शोभा नहीं देते, जो महात्मा गांधी का अनुकरण करने का अभिमान करता है. ..इन शब्दों से उनके हृदय में विद्यमान घोर पक्षपात का आभास मिलता है, जो हमारे आन्दोलन के प्रति हिंसा के भावों से परिपूर्ण है।

९ नवम्बर को नेहरू जी चण्डीगढ़ पधारे, तो स्वामी जी ने सत्याग्रह किया। इन्हें महात्मा आनन्द स्वामी व आनन्दभिक्षु जी के साथ बन्दी बना लिया गया। अन्त में प्रशासन को झुकना पड़ा । हिन्दी रक्षा समिति की माँगें स्वीकार कर ली गईं और सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

१२ दिसम्बर १९६० को प्रातः मान सरोवर का हंस उड़ गया । ❑❑

• वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

हरयाणे का सांस्कृतिक जीवन

–स्वामी ओमानन्द सरस्वती

भारत के पतनकाल के समय आज से दो सौ वर्ष पूर्व भी हरयाणा स्वर्ग के समान ही था। इसकी वैदिक संस्कृति ज्यों की त्यों अविकृतरूप में थी। केवल पौराणिक प्रभाव के कारण तीर्थ, मूर्ति पूजादि का प्रचलन हो गया था। वही अश्वपति के काल का पवित्र चरित्र, शुद्ध, सात्त्विक, निरामिष भोजन, साधु महात्माओं का सत्संग तथा उनके प्रति श्रद्धा, प्राचीन पंचायत के अनुसार सामाजिक व्यवस्था तथा क्षात्रधर्म की प्रवृत्ति का सूचक हाथ में आधुनिक शस्त्र डण्डा अर्थात् सभी प्रकार से वैदिक वर्णाश्रम धर्म का पालन करने में सारा हरयाणा संलग्न था।

हरयाणवी संस्कृति ने यहाँ के जनमानस में एक निश्छल सरलता और अनेक कमनीय मर्यादाओं को संजोया है। समाज में रहते हुए किस व्यक्ति को कैसे रहना चाहिए इसकी सीख देना यहाँ की संस्कृति की एक अनोखी और आदर्श देन है। इसका एक छोटा किन्तु सारगर्भित उदाहरण है, यहीं की एक लोकोक्ति–

"बाप के घर बेटी गुदड़ लपेटी ।"

अर्थात् पिता के घर रहते हुए लड़की को अत्यन्त सादगी से रहना चाहिये, साधारण कपड़े धारण करने चाहिये। शृंगार करना तो दूर रहा, शृंगार करने की बात भी मन में नहीं आनी चाहिए। क्योंकि 'शृंगार व्यभिचार का दूत और सादगी सदाचार की जननी है।' इसलिए सदाचार की रक्षा हेतु पिता के घर पुत्री का सादगी से रहना परमावश्यक है। इसी से सम्बन्धित यहाँ प्रचलित दूसरी लोकोक्ति है–**"तगड़ तोड़ बनिया की छोरी।"** अर्थात् जो व्यक्ति सदाचार से नहीं रहता वह महानिर्बल और नितांत गया बीता है। हरयाणा के लोकमानस में सदाचार का बहुत बड़ा महत्त्व है। यहाँ के निवासी जानते हैं कि कोई भी सुकर्म सदाचार के बिना नहीं हो सकता। इसी बात को मनु महाराज ने इस प्रकार कहा है–

"अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।"

हरयाणवी मान्यताओं में सदाचार की कसौटी शरीरिक और मानसिक स्वस्थता को माना गया है। यही कारण है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिए यहाँ भोजन को भी प्रधानता दी जाती रही है। शक्तिदायक भोजन के प्रति यहाँ लोगों की कितनी अधिक अभिरुचि है, इसको जानने के लिए यहाँ एक लोकोक्ति को उद्धृत करना उपयुक्त होगा ।

जाड़ा लागै पाला लागै खीचड़ी निवाई ।
सेर घी घाल कै लप लप खाई ॥

अर्थात्–जाड़ा गर्मी आदि सभी प्राकृतिक द्वन्द्वों से बचने का एकमात्र उपाय है–बलिष्ठ भोजन।

निरन्तर दो सहस्र वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों के साथ युद्ध करते रहने से इस प्रांतवालों का पठन-पाठन तो समाप्त हो गया। सामाजिक व्यवस्था में भी कुछ गड़बड़ हुई किन्तु दिल्ली आगरा में निरन्तर मुस्लिम बादशाहों की राजधानी होने के कारण धर्म और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भयंकर अत्याचार भी हरयाणे को सहने पड़े। किन्तु दिल्ली के चारों ओर वही चोटी, तगड़ी और ब्राह्मणों के जनेऊ आज तक विद्यमान हैं। क्षत्रिय और वैश्यों को ब्राह्मणों ने पढ़ाना तथा यज्ञोपवीत देना बन्द कर दिया। क्योंकि निरन्तर दीर्घकाल तक युद्ध में चलते रहने से ब्राह्मणों

का भी पढ़ना-लिखना बन्द हो गया था। स्वयं अनपढ़ वे लोग अपने यजमानों को कैसे पढ़ाते और विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत अपने क्षत्रियादि यजमानों को कैसे देते। फिर भी अपनी योग्यतानुसार कथा वार्ता के द्वारा धर्मशिक्षा देते ही रहते थे। हरयाणे में अनेक साधु सन्त हुए हैं जो धर्म प्रचार करके वैदिक संस्कृति को हरयाणे में जीवित रखते रहे। जिनमें निश्चलदास, गरीबदास, नित्यानन्द, चेतरामदास, मस्तनाथ तथा बाबा गोरखनाथ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। नाथ सम्प्रदाय के, जो शैवमत का ही प्रचारक है, छोटे-बड़े मठ तो सैकड़ों की संख्या में हरयाणे में आज भी प्रत्येक तड़ाग पर तथा प्रत्येक ग्राम के बाहर किसी न किसी साधु का डेरा अब भी देखने में आते हैं।

हरयाणे के प्रत्येक ग्राम में शिवालय बने हुए हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि सारा हरयाणा आरम्भ से आज तक शैव सम्प्रदाय अथवा शिवजी से विशेष स्नेह रखता है। कहीं-कहीं इस प्रांत का नाम शिव प्रदेश भी मिलता है। इन बातों से सिद्ध होता है कि इस प्रांत का नाम हरयाणा ही है, हरियाना नहीं। वैसे विष्णु व कृष्ण के मन्दिर बहुत ही न्यून हैं। कहीं ढूंढने से एकाध मिलेगा। वैसे हिन्दुओं का स्वभाव है कि वे सभी देवताओं की मूर्तियों को सिर माथा देते हैं। इसी कारण महात्मा बुद्ध की मूर्ति भी हमें कहीं-कहीं से प्राप्त हुई है। जैसे सांघी ग्राम से महात्मा बुद्ध की एक प्रस्तर-मूर्ति हमें मिली है। किन्तु स्वामी शंकराचार्य के प्रभाव से हरयाणो से बौद्ध धर्म का प्रभाव, जो थोड़ा बहुत हुआ था, समूल नष्ट हो गया। हरयाणे के लोग क्षत्रिय प्रकृति के हैं, वे इसे कैसे पसन्द करते। यहाँ पर वैदिक संस्कृति का प्रभाव आदि काल से आज तक रहा है। ❑❑

स्रोत : भाषा विभाग हरयाणा वार्षिक संगोष्ठी १९६७-६८
प्रस्तुति : अमित सिवाह

हमारा अभिवादन नमस्ते ही है

नमस्ते का अर्थ–नमः+ते=नमस्ते, अर्थात् तेरे या आपके लिए आदर सत्कार नमः का अर्थ है सत्कार, श्रद्धा तथा झुकना। ते का अर्थ तुम्हें या आपके लिए। संस्कृत भाषा में छोटे बड़े दोनों के लिए एक वचन का ही प्रयोग होता है। अतः 'ते' ही छोटे बड़े सबके लिए आता है ।

प्रश्न–बड़े छोटों को नमस्ते कहें क्या यह असंगत तथा अनुचित नहीं ?

उत्तर–नहीं । बड़ों का छोटों के प्रति आशीर्वाद ही उनकी पूजा अथवा सत्कार है ।

नमस्कार=नमः+कारः, यानि सत्कार किया। परन्तु इसमें यह नहीं आया कि किसका सत्कार किया। इसलिए नमस्कार शब्द अधूरा है नमस्ते ही ठीक है। परस्पर मिलने पर अभिवादन के तोर पर और कोई भी शब्द संगत (उचित) नहीं है ।

शास्त्रों में नमस्ते का शब्द हजारों स्थानों पर मिलता है–

नमस्ते रुद्र मन्यवे । (यजुर्वेद)

अर्थ–दुष्टों को रुलाने वाले परमात्मा को नमस्कार हो।

सा होवाच–नमस्ते याज्ञवल्क्याय । (शतपथ ब्राह्मण)

गार्गी ने अपने पति याज्ञवल्क्य को नमस्ते कहा।

ज्येष्ठोराजन् वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ। (महाभारत)

शकुनि ने युधिष्ठिर को नमस्कार किया ।

हराए नमस्ते हरए नमह । (गुरुग्रन्थ साहब)

हरि (परमेश्वर) को नमस्कार है, नमस्कार है । ❑❑

शराब और जुआ

–प्रस्तुति : दिनेश कु० शास्त्री (मो०–९६५०५२२७७८)

शराब :–

एक गणिका सिर पर शराब का करवा रख कर चल रही थी। उससे किसी ने पूछा कि तुम इस करवे में क्या लिये जा रही हो? गणिका उत्तर देती है–

मदः प्रमादः कलहश्च निद्रा बुद्धिर्क्षय धर्मविपर्ययश्च ।

सुखस्य कन्था दुखस्य पन्था अष्टौ अनर्था वसन्ति इह कर्के ॥

अर्थ–इस सुरा पात्र में नशा, आलस्य लड़ाई झगड़ा, नींद बुद्धि का नाश, अधर्माचरण, सुख के चीथड़े और दुःख का मार्ग–ये आठ अनर्थ हैं।

न स स्वो दक्षो वरुण धृतिः।
सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ॥

–ऋग्वेद ७।८६।६

अर्थ–मनुष्य का केवल अपना मन ही उसे पथ भ्रष्ट नहीं करता । अपितु सुरापान करने (शराब पीने), क्रोध करने, जुआ खेलने तथा असावधान रहने से भी मनुष्य पाप के गढ्ढे में गिर जाता है।

वैदिक सोमरस शराब नहीं था।

ओषधिः सोमः सुनोतेः यदेनमभिषुणवन्ति।

–निरुक्त ११।२।२

अर्थ–सोम एक औषधि होती है। सोम शब्द निचोड़ने अर्थवाली षुञ् धातु से बनता है। औषधि को सोम इस कारण से कहते हैं कि क्योंकि उस औषधि को कूट, पीस कर, निचोड़कर रस निकाला जाता है।

यह रस बहुत स्वादु, मधुर और तीव्र होता है। इसके पीने से मन, मस्तिष्क और शरीर में वीरता का संचार हो जाता है।

शराब, माँस, अफीम, तम्बाकू, भांग, चरस आदि जितने भी नशे वाले पदार्थ हैं, वे सब शरीर और बुद्धि का नाश करने वाले हैं। अतः उनका निषेध है। नशे वाले पदार्थों के प्रयोग से अपराध वृत्ति बढ़ती है। अपराध वृत्ति बढ़ने से अपराध बढ़ते हैं। इसलिये भी सभी नशे वाले पदार्थों के प्रयोग की वैदिक साहित्य में मनाही है।

जुआ :–

जाया तप्यते कितवस्य हीना। (ऋग्वेद)

अर्थ–जुएबाज की स्त्री दीन हीन होकर दुःख पाती रहती है।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् । (ऋग्वेद)

अर्थ–जुआरी की सास उनकी निन्दा करती है। स्त्री रोकती है। और वह जुआरी याचना करने पर भी किसी सहायक को नहीं पाता ।

अक्षैर्मा दीव्यः । (ऋग्वेद)

जुआ मत खेल।

ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त (१०।३४) जुए की बुराईयाँ बताने के लिए है। उसके नवम मन्त्र में जुए के पासों को अंगारों के समान बताया गया है जो ऊपर से ठण्डे दीखने पर भी हृदय को जलाने वाले होते हैं।

प्रकाशम् एतत् तास्कर्यम् यद् देवनसमाह्वयौ।
तयोः नित्यं प्रतिघाते नृपतिः यत्नवान् भवेत् ॥

–मनुस्मृति

अर्थ–ये जो जुआ (जड़ वस्तुओं से बाजी लगाकर खेलने वाला) और चेतन प्राणियों को दाव पर लगाकर खेलने वाला समाह्वय हैं, वे सामने वाली चोरी है। राजा इनको समाप्त करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। ❑❑

गाय व भैंस के दूध में अन्तर

जो बहुत कम लोग जानते हैं !

- भैंस अपने बच्चे से पीठ फेरकर बैठती है चाहे उसके बच्चे को कुत्ता खा जाये वह नहीं बचायेगी।
- जबकि गाय के बच्चे के पास अनजान आदमी तो क्या शेर भी आ जाये तो जान दे देगी, परन्तु जीते जी बच्चे पर आंच नहीं आने देगी। इसीलिए उसके दूध में स्नेह का गुण भरपूर होता है।
- भैंस को गन्दगी पसन्द है, कीचड़ में लथपथ रहेगी।
- जबकि गाय अपने गोबर पर भी नहीं बैठेगी उसे स्वच्छता प्रिय है।
- भैंस को घर से २ कि. मी. दूर तालाब में छोड़कर आ जाओ वह घर नहीं आ सकती उसकी याददास्त जीरो है।
- पर गाय को घर से ५ कि. मी. दूर छोड़ दो, वह घर का रास्ता जानती है आ जायेगी। गाय के दूध में स्मृति तेज है।
- दस भैंसों को बांधकर २० फुट दूर से उनके बच्चों को छोड़ दो, एक भी बच्चा अपनी माँ को नहीं पहचान सकता ।
- जबकि गौशालाओं में दिन भर गाय व बछड़े अलग-अलग शेड में रखते हैं, सायंकाल जब सबका माता से मिलन होता है तो सभी बच्चे (हजारों की संख्या में) अपनी माँ को पहचान कर दूध पीते हैं। ये है गाय दूध की याददास्त ।
- जब भैंस का दूध निकालते हैं तो भैंस सारा दूध दे दती है।
- परन्तु गाय थोड़ा-सा दूध ऊपर चढ़ा लेती है, और जब उसके बच्चे को छोड़ेंगे तो उस चढ़ाये दूध को उतार देती है। ये गुण माँ के हैं जो भैंस में नहीं हैं।
- गली में बच्चे खेल रहे हों और भैंस भगती आ जाये तो बच्चों पर पैर अवश्य रखेगी...
- लेकिन यदि गाय आ जाये तो कभी भी बच्चों पर पैर नहीं रखेगी।
- भैंस धूप और गर्मी सहन नहीं कर सकती ...
- जबकि गाय मई और जून में भी धूप में बैठ सकती है।
- भैंस का दूध तामसिक होता है...
- जबकि गाय का सात्त्विक ।
- भैंस का दूध आलस्य भरा होता है, उसका बच्चा दिन भर ऐसे पड़ा रहेगा जैसे भांग खाकर पंड़ा हो। जब दूध निकालने का समय होगा तो मालिक उसे उठायेगा...
- परन्तु गाय का बछड़ा इतना उछलेगा कि आप रस्सा खोल नहीं पायेंगे।
- फिर भी लोग भैंस खरीदने में लाखों रुपये खर्च करते हैं।
- जबकि गौमाता का दूध अमृत समान होता है ।

॥ जय गौमाता ॥

ऑनलाइन है भगवान फिर भक्त क्यों हैं परेशान ? (पृष्ठ ५ का शेष)

कैसे मिलेगा?

यह तो वही बात हुई कि कोई हमारा नाम लेकर अपना मोबाइल चार्जिंग पर लगाए और हम सोचें कि हमारा मोबाइल चार्ज हो जाएगा ! या कोई शक्कर....शक्कर.... रटे और मुंह हमारा मीठा हो जाये ! क्या ऐसा हो सकता है ! आखिर सर्वशक्तिमान ईश्वर इतनी सरलता से कैसे आशीर्वाद देंगे ?

इस कारण ऑनलाइन वाले भक्तों को समझना होगा कि ईश्वर एस. एम. एस. नहीं साधना से मिलते हैं। अगर आज के बच्चे इस ऑनलाइन की दुनिया में उलझ गये तो कल सनातन धर्म का क्या होगा? आप सोच सकते हैं, ये मंदिर ये तीर्थस्थान होंगे या नहीं लेकिन ये जरुर है कि ये ऑनलाइन बाजार वाले किसी दूसरे मत का दर्शन करा रहे होंगे। कहीं ऑनलाइन दर्शन के चक्कर में ना ये धर्म बचे, न यह मठ और ना ये बारह ज्योतिर्लिंग। ❑❑

पादरियों ने ऐसे भगाया कोरोना (पृष्ठ ११ का शेष)

पर विश्वास है। लेकिन बाइबल की कहानियाँ हैं किस्से हैं वही रटाये जा रहे हैं। जीसस पर विश्वास से एक बात और याद आई कि ये २६३ पॉप क्यों मरे? क्या इनका भी जीसस पर विश्वास नहीं था? ये तो जीसस के उत्तराधिकारी माने जाते हैं।

शायद यही कारण है कि कई रोज पहले छतीसगढ़ के कोंडागाँव जिले में स्थानीय आदिवासियों को गुस्सा आया और चर्च के नाम पर उनकी जमीन पर हो रहे कब्जे को लेकर उनमें रोष था। उन्होंने अनेकों गाँवो में उन सबको पीटा जो ईसामसीह को मानते थे। सब अपनी जान बचा कर गाँव की सरहद से दूर भागते रहे, भागते रहे। वो तब तक उनका पीछा करते रहे, जब तक लोग उनकी नजरों से ओझल नहीं हो गए। लगभग ३३ गाँवों के लोगों ने अलग-अलग सामुदायिक भवन, चर्च, प्रार्थना घर और खेल स्टेडियम में शरण ले रखी है। पीड़ित लोगों का आरोप है कि ईसाई धर्म से नाराज कई गाँवों के लोगों ने संगठित हो कर हमला किया। कहीं मारपीट की गई, कहीं घरों में तोड़पफोड़ की गई। कहीं प्रार्थना घर तोड़ दिया गया तो कहीं ईसाई धर्म को मानने वालों को गाँवों से ही निकाल दिया गया।

कुछ भी हो जहाँ एक तरपफ इनका पाखंड चालू है तो दूसरी तरपफ आम लोग इनका सर्कस समझ गये, वो जाग गये है जो अब इनसे सवाल करने लगे हैं। शायद ये संख्या आगे इतनी बढ़ जाये कि पादरी ही खुद जीसस पर सवाल खड़े करने लगे कि ये कैसा अंधविश्वास है? ❑❑

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन (पृष्ठ १८ का शेष)

सिद्धांत आदि के विचार (जो उन्होंने पहले से पुस्तक आदि से जान रखे हैं वे) उठते हैं, उद्‌बुद्ध होते हैं और इनसे प्रेरित होकर वे विद्यार्थी भी वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य में प्रेरित होते हैं। बस, मूर्ति, चित्र, स्टेच्यू आदि यहाँ तक उपयोगी हो सकते हैं, और उनके ऐसे विवेकपूर्ण उपयोग पर आर्यसमाज को भी कोई आपत्ति नहीं है और न ही होनी चाहिए।

- जड़ को चेतन समझकर किए जाने वाले व्यवहार तो अन्धविश्वास और अविद्या ही माना जाएगा।
- यदि आपके पास पंडित रामचन्द्र जी देहलवी की लघु पुस्तिका पूजा क्या, क्यों और कैसे? हो तो इसे अवश्य पढ़िए। ❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०२/२०२३
भार ४० ग्राम

फरवरी २०२३

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2021-23
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२१-२३
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2021-23

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएँ, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

-दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष एवं तार्किक समीक्षा के लिए
उत्तम कागज, मनमोहक प्रिन्ट एवं सुन्दर आकर्षण मुद्रण
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ **सत्यार्थ प्रकाश** सत्य के प्रचारार्थ

प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23x36½16	मुद्रित मूल्य ₹60	प्रचारार्थ ₹40	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
विशेष संस्करण (सजिल्द) 23x36½16	₹100	₹60	
पॉकेट संस्करण	₹80	₹50	
विशिष्ट पॉकेट संस्करण	₹150	₹100	
स्थूलाक्षर (अजिल्द) 20x30½8	₹200	₹120	
उपहार संस्करण	₹1100	₹750	
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी अजिल्द	₹200	₹130	
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी सजिल्द	₹250	₹170	

कृपया एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द जी की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें..

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-6
Ph : 011-43781191, 09650522778
E-Mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा०.....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।